

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180065

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/K 475 Accession No. H2887

Author कुशवाहा, राजेन्द्र ।

Title जहर बाढ़ । 1952

This book should be returned on or before the date
last marked below.

जुह र छाद

[कहानी संग्रह]



लेखक—

श्री राजेन्द्र कुशवाहा एम० ए०

विनीत पुस्तक भण्डार
— आगरा —

प्रकाशक—

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

प्रथम संस्करण अप्रैल १९५७
मूल्य २)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखी, आगरा

आदरणीय

श्री जगन्नाथ जी तिवारी को,
जिनके ये शब्द मेरे कानों में
सदैव गूँजते रहते हैं—
'अन्याय के सामने भुकने से
टूट जाना कहीं अच्छा है,'
सादर

भूमिका

इस संग्रह की कहानियाँ हिन्दी की औसत कहानियों से भिन्न हैं। ये जितनी रोचक हैं, उससे भी ज्यादा तिलमिला देने वाली हैं। इधर मैंने नये लेखकों की जो कहानियाँ पढ़ी हैं, उनमें भावुकता, गाँवों के कवित्वमय चित्रण और व्यथा की हल्की तस्वीरें देखी हैं। उनमें गहराई की कमी, अनुभव का बहुत संकुचित होना खटकता रहा है। राजेन्द्र कुशवाहा की कहानियाँ अनुभव की विशदता और ताजगी में अनोखी हैं। उनका सबसे बड़ा गुण उनकी नश्वर जैसी तेजी है जो एक बार पाठक को ममन्तिक पीड़ा देकर उसे सोचने पर विवश करती है। इन कहानियों की यही बड़ी सफलता है।

पीड़ा देना साहित्य का कर्तव्य नहीं है। लेकिन पीड़ा से उदासीन होकर बच निकलना भी साहित्य का गुण नहीं है। राजेन्द्र कुशवाहा में अभी युवकोचित संवेदना है। कहानियाँ लिखते समय लेखक स्वयं पीड़ित हुआ है, यह कहानियाँ पढ़ कर मालूम हो जाता है। लेकिन यहाँ हल्की भावुकता का नाम नहीं है। लेखक बहुत नपे तुले ढंग से उस पीड़ा का चित्रण करता है जो वस्तुगत जगत् से उसके भाव जगत् में पैदा हुई है। वह व्यथित है साथ ही व्यथा को नियंत्रित भी

किए है। यह एक सच्चे कलाकार का गुण है जिसे राजेन्द्र कुशवाहा विकसित भी कर सकते हैं और पहली सफलता की चकाचौंध से नष्ट भी कर सकते हैं।

राजेन्द्र कुशवाहा ने एक बार नागरी प्रचारिणी में “तफतीश और रिपोर्ट” कहानी पढ़ी थी। तमाम श्रोता चित्रलिखे से बैठे थे; बहुतों की आँखें गीली थीं। लेकिन कुशवाहा एक स्वर से अपनी कहानी पढ़े जा रहे थे और स्वर में ज़रा भी कम्पन न आने देकर उन्होंने कहानी समाप्त कर दी। अपनी भावना पर यह नियंत्रण मेरे लिए अद्भुत था। संसार में स्वयं मनुष्य कितनी हृदय विदारक घटनाओं का क्रूर निर्माता हो सकता है, यह उस कहानी को पढ़कर ज्ञात होता है। वह इस संग्रह की सबसे मार्मिक कहानी है। लेकिन हर कहानी में समाज के किसी न किसी नये पहलू पर लेखक की निगाह गई है और जो मनुष्य की व्यथा हमसे छिपी रही है, उसने उसे हमारे सामने उघाड़ दिया है। कहीं धर्म की आड़ में नारी का अपहरण है कहीं छोटे अनाथ बच्चों के प्रति पाशविक व्यवहार है, कहीं न्याय और शान्ति की रक्षा के नाम मानवता की हत्या है, कहीं युद्ध से पैसा कमाने वालों का मानवद्रोही अहंकार है। हर जगह लेखक मनुष्य के आत्म सम्मान का प्रहरी है; हर जगह उसकी कलम मानवता के शत्रुओं की वास्तविकता प्रकट करके उनका दिखावटी स्वांग खत्म कर देती है।

इन कहानियों में सतह के नीचे खोलता हुआ रोष है जो

आदर की वस्तु है। कुशवाहा के लिए अनुभव का क्षेत्र विस्तृत करने की गुंजाइश है। कारण कि इन कहानियों में जिस मानवता को उन्होंने देखा है, वह अन्याय से पीड़ित और निस्सहाय मानवता है। लेकिन उसके अलावा भी मानवता है जो अपनी निस्सहायता दूर कर रही है, जो संगठित होकर अपनी शक्ति पहचान रही है, जिसके पास पीड़ा और रोष के साथ धैर्य भी है जिससे वह निराश न होकर लंबे संग्राम को तैयार करती है। अवश्य ही राजेन्द्र कुशवाहा इस समाज-व्यवस्था को बदलना चाहते हैं; इसीलिए उसकी वास्तविकता दिखाकर वे पाठक को तिलमिला देते हैं। लेकिन इसी कारण उस दूसरी मानवता को पहचानना भी जरूरी है जो यह समाज-व्यवस्था कैसे बदलेगी और उसे बदलने वाली शक्ति कहाँ जन्म ले रही है। यह बात मैंने इसलिए लिखी कि कहानियाँ इतनी अच्छी हैं कि बधाई देने से अगली संभावनाओं का उल्लेख करना ज्यादा आवश्यक लगा।

ये कहानियाँ जहाँ साहित्य प्रेमियों के पठन-पाठन की वस्तु हैं, वहाँ वे साधारण जनता की सामाजिक चेतना को निखारने का साधन भी हैं। इनसे यथार्थ जीवन के प्रति हमारी जागरूकता बढ़ती है। यह भी उनका एक गुण है। व्यर्थ के शब्दजाल का अभाव और अन्तिम अभाव छोड़ने में हर वाक्य की सार्थकता—यह इनकी कलात्मक विशेषता है। ऐसे लेखक से आशा की जा सकती है कि वह साहित्य-रचना को अपने जीवन का मुख्य ध्येय बनायेगा।

—रामविलास शर्मा

कहानियों के विषय में

मुझे कुछ नहीं कहना है। जैसी भी हैं वे आपके सामने हैं। हाँ ! आदरणीय डाक्टर रामविलास जी शर्मा को धन्यवाद अवश्य देना चाहता हूँ कि जिन्होंने न केवल इस संग्रह की भूमिका ही लिखी है अपितु न जाने कितनी अमूल्य सुझाव भी दिये हैं और सच बात तो यह है कि संग्रह का नाम तक उनका ही दिया हुआ है, पर किन शब्दों के साथ यह नहीं समझ पा रहा हूँ। साथ ही आदरणीय डाक्टर पद्मसिंह शर्मा “कमलेश”, राजेन्द्र रघुवंशी, प्रो० तारकनाथ बाली, प्रो० रामगोपालसिंह चौहान और प्रो० घनश्याम अस्थाना का भी आभारी हूँ कि जिनके प्रोत्साहन से ही कहानियाँ संग्रह के रूप में आ सकीं। भैया जगत्प्रकाश चतुर्वेदी, देवेन्द्र शर्मा “इन्द्र”, त्रिलोकी प्रसाद शर्मा, राजेन्द्र कुमार जैन, हरनरायण गोयल और दीनानाथ आदि सभी मित्रों का प्रोत्साहन भी क्या कभी भुलाया जा सकता है ? अन्त में मैं उन सभी मित्रों का आभारी हूँ कि जिनकी प्रेरणाओं और प्रोत्साहनों से मैंने कहानियाँ लिखीं वे कैसी बन पड़ी है यह तो आप ही बतलायेंगे।

—राजेन्द्र कुशवाहा

विषय-सूची

१—ज़हरबाद	१
२—ताबीज और रुपया	११
३—हरि कीर्तन	१८
४—कीचड़ के कीड़े ।	२७
५—चढ़ाव और उतार ।	३६
६—अर्थी ।	४७
७—ऐमरजेंसी	६०
८—समझौता	६७
९—मेरी माँ तो	७९
१०—प्लेटफार्म पर	८४
११—दो आवाजें	९३
१२—पंद्रह अगस्त	१००
१३—बग्घी रोड	११०
१४—तफतीश और रिपोर्ट	११६



जहरबाद

“लल्लन बाबू ! यह तो जहरबाद बन गया है, अच्छा ही किसी डाक्टर को दिखायें ।”

अशरफी ने हाथ को बड़े गौर से देखते हुए कहा ।

यों तो अशरफी निरा गँवार है पर फोड़े फुन्सी के मामले में उसे अच्छी जानकारी है । न भी हो तो भी इस विषय पर उसका हमारे घर में सिक्का बैठा हुआ है, एक तो घर का पुराना नौकर और दूसरे कुछ संयोग ही ऐसा रहा ।

पास पड़ोस किसी के भी फुन्सी, फोड़ा उठा कि अशरफी के पास दौड़े आये और फिर अशरफी का सीधा सा नुस्खा होता, नीम की छाल, हल्दी नमक और घाटे की पुलटस । हाँ किसी खास और पेचीदा फोड़े पर वह एक काला मल-हम देता और कह देता—“कीमती चीज है, यह जानो तुम्हारा प्रेम है, कोई बड़ा सा बड़ा डाक्टर बना तो दे इसे तो मैं जानूँ ।.....”

घर में खलबली सी मच गई,

“हाय जहरबाद हो गया ? अब क्या होगा ?” बुआ जी जो मेरी शादी के सिलसिले में गाँव से आई थीं, कुछ सक-पकाती सी बोलीं ।

“बचपन न गया और न जाय । मामूली सी फुन्सी को कुरेद डाला, फोड़ा बन गया, कच्चे फोड़े को फोड़ दिया और

अब यह हाल कर लिया भगवान जाने कब समझ आवेगी ।”
माँ ने कुछ डाँढते हुये कहा ।

“अब क्या होगा भाई साहब ।” छोटी बहिन पुष्पा ने
रुआँसी सी होकर पूछा ।

“हाथ कटेगा और क्या होगा ।” मैंने हँसते हुए कहा ।”

मेरा हाथ सूज कर डबल रोटी सा हो गया था एक
अजीब दर्द की तड़पन सी उठ रही थी पर फिर भी घरके
लोगों की बेचैनी देख मुझे हँसी सी आ गई, अशरफी ने कह
दिया और सबने विश्वास कर लिया मानो सिविल सर्जन ने
कहा हो ।

“बड़ी कतरनी सी जुबान चलती है । ऐसी अशुभ बातें
मुंह से निकाली जाती हैं । यही पढ़ा होगा कालिज में ।”
दूर के रिश्ते की चाची ने बड़ी आत्मीयता का भाव दिखाते,
फटकारते हुए कहा ।

चारों ओर से जो यह लताड़ों की बौछार हुई तो मैं भी
कुछ खीज सा गया—

“आखिर आप लोगों ने समझ क्या रखा है ? यह
अशरफी भी कोई डाक्टर है या वैद्य ? तकलीफ मेरे है और
परेशानी है आपको ? मैं साफ कहे देता हूँ, मुझे तंग करना
ठीक नहीं है ।” मेरा बिगड़ा हुआ स्वर सुन सब चुप हो गये,
पर माँ भला कब चुप रहने वाली थीं, उन्होंने आड़े हाथों
लिया—

“अच्छा बाबा अच्छा ! हम सब तो तेरे दुश्मन हैं, जो

तू चाहे सो कर, अपना तो.....”

मैंने अब जो यह रंग बदलते देखा तो पूरी बात सुने बगैर सीधा जीना उतर सड़क पर आ गया ।

शाम हो चली थी । अंधेरा धीरे धीरे साम्राज्यवादी चालों की तरह फैलने लगा था । सड़क की रौनक बढ़ चली थी । म्यूनिसिपैलटी की बत्तियाँ जल उठीं थी और उन पर पतंगे आ आकर गिरने लगे थे । थोड़ी देर पहिले ही बारिश बन्द होकर चुकी थी । मिट्टी में से सौंधी सौंधी महक आ रही थी । सड़क का पानी अभी सूखा न था । रपटने का पूरा पूरा डर था । आज एक साहित्यिक गोष्ठी थी । समय गुजारने का इससे अच्छा और कौन साधन हो सकता है । संभल संभल कर पैर रखता हुआ गोकुलपुरा पहुँच गया । गोष्ठी शुरू हो चुकी थी ।

गोष्ठी समाप्त हुई । चारों ओर से प्रश्नों और नेक सलाहों की बौछारें होने लगीं किसीने कहा “तुगमलंगा बाँधो”, दूसरे ने कहा “अजी पथर चटा का पत्ता बाँधो”, किसी और ने कहा, “अजी पुलटस बाँधो पुलटस, सुबह होते होते ठीक हो जावेगा ।”

“हज़ार मुँह और हज़ार नुस्खे मिलेंगे, हर आदमी डाक्टर और हकीम है । सिबाज़ोल की गोलियाँ खाओ और किसी डाक्टर को दिखाओ वरना लेने के देने पड़ जावेंगे ।” रघुवंशी जी ने आज्ञा सी देते हुए कहा ।

मैंने भी सब की हाँ में हाँ मिला दी, और विश्वास दिला दिया कि उन्हीं की बतलाई दवा का उपयोग करूँगा ।

घर आया तो हाथ दर्द के मारे फटा जा रहा था । सारी रात कखटें बदलते बीती । हाथ और भी अधिक सूज कर तन गया था, मुझे भी डर लगने लगा कि कहीं जहरबाद तो नहीं हो गया……?

सुबह हुई । चिड़ियाँ चहकने लगीं । मेरी कराहट और बढ़ गई । दर्द का और सहना अब असंभव था । घर वालों ने जो हाथ देखा तो वे भी घबड़ा गये । पिता जी ने एक डाँट लगाई—

“कम्बखतों पर अपना इलाज भी नहीं कराया जाता, मैं कमाकर लाऊँ या इनका इलाज कराने जाऊँ……”

“जा बेटा ! किसी डाक्टर को दिखाआ, न जाने क्या से क्या हो जाय । फुन्सी थी ठीक हो जाती, पर कुरेद दिया फोड़ा बन गया, लाख मना किया फोड़ा पका नहीं पर नहीं माना, फोड़ दिया……अरे कभी कहना भी तो माना कर जा दिखा आ डाक्टर को ।” मैंने बड़े प्रेम भरे शब्दों में कहा ।

बात मुझे भी कुछ जँच रही थी । हाथ की हालत ही ऐसी थी । डर रहा था कहीं सैप्टिक न बन गया हो ।

अपनी आदत कुछ ऐसी है कि बीच की चीज पसंद नहीं । इधर या फिर उधर । जब डाक्टर को दिखाना है तब फिर बड़े डाक्टर को ही क्यों न दिखाया जाय । आखिर तय हुआ कि शहर के सबसे बड़े डाक्टर, डाक्टर सिंह को हाथ दिखाया जाय ।

डाक्टरसिंह की कोठी में बरामदे के सामने एक नई ब्यूक खड़ी हुई थी । बरामदे में तीन व्यक्ति बैठे बैठे डाक्टर साहब

की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनमें से एक नेता से लगते थे। भारी भरकम, सफेद दूध सी खदर की टोपी, खदर का कुर्ता और खदर की ही धोती पहिने, बैठे ऊँघ रहे थे।

मैंने बरामदे में कदम रखते ही पूछा “डॉक्टर साहब हैं क्या ?”

“वह अभी अन्दर नाश्ते पर हैं, बैठिये।”

उन्होंने हड़बड़ा कर आँखें खोलते हुए कहा।

मैं कुर्सी खींच कर बैठ गया, मेरे बैठते ही उन्होंने प्रश्न किया—

“यह क्या हो गया आपके हाथ में ?”

“यों ही एक मामूली सी फुन्सी थी उसे कुरेद दिया तो फोड़ा बन गई, मैंने समझा कि फोड़ा पक गया, तो उसे फोड़ डाला और अब लगता है कि जहरबाद हो गया, आपको क्या……”

“मेरे पानी उतर आया है।” उन्होंने पूरी बात सुने बग़ैर ही जवाब दिया, मानों वे पहिले ही से इस प्रश्न के लिये तैयार थे।

“पानी उतर आया है ?” मैंने आश्चर्य से पूछा

“हाँ जी ! क्या कहते हैं……?”

“हार्ड्रोसील।” बराबर में बैठे सूटधारी सज्जन ने वाक्य पूरा किया।

“जाने क्या क्या बीमारियाँ चल पड़ी हैं।” बड़ा विचित्र सा मुँह बनाते हुए वे बोले।

“अभी क्या है ? अभी तो एंटम और हार्ड्रोजन बम

के केवल प्रयोग ही हो रहे हैं। उन्हीं से यह हाल है, और यदि कहीं युद्ध छिड़ गया तो न जाने क्या होगा।”

मैंने उनकी बात को और आगे बढ़ाते हुये कहा।

“अजी होगा क्या, जरा आवादी छट जावेगी।” उन्होंने बड़ी लापरवाही से कहा। मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैं सोच रहा था कि क्या ऐसे भी लोग हैं जो युद्ध जैसी गंभीर समस्या को इतने हलके तरीके से लेते हैं।

“पर यह समझ लीजिये कि यदि तृतीय महायुद्ध हुआ तो सारी मानवता, कला, और संस्कृति का नाश हो जावेगा। आगरे का ताज, दिल्ली की कुतब और अजन्ता की गुफाओं का कहीं नामों निशान भी बाकी न रहेगा। ये लहराते हुये खेत, आँगन में घुटने चलते मानवता की नई कलियाँ, सब नष्ट हो जावेंगी। यह अणु युग है। संसार के विनाश की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यूरोप वाले युद्ध की विभीषिका का दिग्दर्शन कर चुके हैं, उसके परिणामों से काँप उठे हैं, इसी लिये तो तृतीय महायुद्ध का रंगमंच एशिया को बनाये जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। आज का इन्सान यह सब कुछ समझता है। वह जग रहा है। वह शान्ति चाहता है, वह चाहता है कि उसका भी एक छोटा सा घर हो, एक छोटी सी गृहस्थी हो। वह महिनत करे और बही उसका फल ले। कल की चिंता न हो। वह युद्ध नहीं चाहता वह शान्ति चाहता है शान्ति।” मैंने बड़े आवेश के साथ कहा।

“अजी यह सब बेकार की बात है। शान्ति के नारों से युद्ध नही टल सकता। युद्ध तो प्रकृति का नियम है। आज

अधर्म बढ़ रहा है। इस अधर्म के नाश के लिये और धर्म की स्थापना के लिये युद्ध होगा ही। कृष्ण ने भी तो यही कहा था। आज सारा व्यापार चौपट पड़ा है, चारों और बेकारी है। युद्ध छिड़ा नहीं कि व्यापार में जान आई, और बेकारी दूर हुई।” वे कहते जा रहे थे और मैं सोच रहा था, कि आज भी शान्ति के दुश्मन मौजूद हैं। ऐसे लोगों का क्या इलाज हो ? मुझसे न रहा गया। आखिर पूछ बैठा—

“क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप क्या करते हैं ?”

“मैं बिजनेस करता हूँ।” उन्होंने बड़ी सरलता से उत्तर दिया।

“प्रथम महायुद्ध से पूर्व आप क्या करते थे ?” मैंने प्रश्न किया।

“यों ही एक मामूली सी कपड़े की दुकान थी।”

“फिर प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ?”

“पहली लड़ाई में एक सप्लाई का ठेका मिल गया था। आग्य ने साथ दिया, एक सांझी को मिलाकर हाथरस में ही एक कपड़े का मिल खोल लिया था।”

“और फिर दूसरे महायुद्ध के पश्चात् ?”

“अजी फिर तो जरा भगवान की देन हुई, एक कपड़े की मिल कानपुर में और हो गई और एक काँच का कारखाना फिरोजाबाद में, हाथरस में भी दो मिलें हो गई, एक तेल की और एक कपड़े की। कहिये ? क्या मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?” सेठजी ने गर्व मिश्रित नम्रता से कहा। मुझे इस शान्ति के विरोधी पर गुस्सा आ रहा था। जी चाह

रहा था कि गला पकड़ कर घोंट दूँ और कहूँ कि लो तृतीय महायुद्ध के पश्चात् तुम्हारा यह होगा। आखिर मैं कह ही बैठा—“माफ़ कीजियेगा सेठजी। युद्ध से पूर्व आप समाज के लिये फुन्सो थे और युद्ध के बाद फोड़ा हो गये और अब आप समाज के लिये जहरबाद बन रहे हैं, पर पता है आपको जहरबाद का क्या होता है—ऑपरेशन, समझे—” मैं आवेश में था, और न जाने क्या न क्या कहता, पर तभी डाक्टर साहब आ गये। बड़े तपाक से सेठजी से हाथ मिलाते हुये बोले—

“ऐक्सक्यूज मी सेठजी। मुझे पता न था कि आप आ गये, आप भी क्या हैं, खबर तक नहीं करवाई।”

सेठजी कुर्सी से उठ खड़े हुये, पर बोले कुछ नहीं उनका बदन काँप रहा था और मुझे घूर रहे थे, जैसे खा जावेंगे। डाक्टर साहब ने मेरी ओर मुँह मोड़ते हुये कहा।

“क्या बात है मिस्टर?”

“जी मेरा हाथ—”

“देखिये आप कल आईयेगा, मुझे अभी सेठजी को देखना है और फिर हॉस्पिटल जाना है, कल आइये इसी वख्त।”

कहते-कहते डाक्टर साहब सेठजी को अन्दर ड्राईंग रूम में ले गये। सेठजी ने दरवाजे पर पहुँच कर मेरी ओर फिर कर देखा, अनायास मेरा हाथ मूछों पर चला गया और हँसी आ गई। सेठजी ने गर्दन एक झटके के साथ मोड़ ली।

कोठी के बाहर आकर मैंने अपने हाथ की ओर देखा, वह फूला हुआ था, ठीक सेठजी की तोंद की तरह, उसमें भी

जहर भरा था। सामने से कॉलेज का एक विद्यार्थी चला आ रहा था, शायद वह भी यहीं किसी कोठी में रहता था, मेरे हाथ को सूजा देख पूछ बैठ—

“क्या हो गया भाई साहब।”

“फुन्सी से फोड़ा और फोड़े का जहरबाद।” मैंने उत्तर दिया। वह हँस पड़ा। मैं भी कोठी में खड़ी सेठजी के दिल की तरह काली ब्यूक को देख हँस दिया।

हाथ बड़ी जोरों से दर्द कर रहा था। मैं सीधा ज़र्राह के पास आया। यह ज़र्राह हमारा फ़ैमली सर्जन है। इसके पुरखे मुगल काल में शाही ज़र्राह थे। फुन्सी फोड़ों की चीरा फाड़ी उनका खानदानो पेशा है। जब से डाक्टरों की भरमार शुरू हुई, बेचारों का पढ़े लिखे समाज ने बहिष्कार कर दिया।

ज़र्राह ने एक पुरानी पतली छुरी सी उठाई और बोला—
“अब आपकी रजपूती का इस्तहान है।” मैं मुस्करा दिया, और ज़र्राह ने बिना किलोरोफार्म सुघाये, बिना किसी मरफिया का इंजेक्शन दिये मेरे हाथ का पलक मारते ऑपरेशन कर दिया, मैंने अपने ओठों को दाँत के नीचे कसकर दबा लिया था और साँस रोक ली थी। फोड़े में चीरा लगाने के बाद उसने हलके हाथ से दबा दिया, कुछ पीला, काला, सफ़ेद और नीला सा मिलाजुला द्रव्य बाहर निकल आया। कपड़े से उसे पोंछते हुये वह बोला।

“लीजिये बाबूजी जहर निकल गया बिना चाक किये नहीं निकलता। यह तो मामूली था, वरना ठीक होना मुश्किल था और कोई हुकम।”

“इस जहरबाद का तो ऑपरेशन हो गया मियाँ, प
अभी बहुत से, चलते फिरते जहरबाद मौजूद हैं। “मैंने ज़रि
के हाथ पर चवन्नी रखते हुये कहा। मेरे सामने सेठजी क
भारी भरकम तसवीर घूम रही थी।

ज़रिह मेरी ओर आँख फाड़कर देखने लगा, उसकी सम
में कुछ न आया मैं हँस दिया, वह भी हँस दिया और फि
बात को बिना समझे, मेरे हाथ पर पट्टी बाँधते और हँसते
हुये बोला—

“अजी बाबूजी। सबको यहाँ ले आओ फिर देखें जहरबाद
कैसे अच्छा नहीं होता, एक-एक दिन में सौ-सौ चीरे किये
सौ-सौ।”

तबीज और रुपया

—यह है बुलन्द दरवाजा ! दुनिया का सबसे ऊँचा दरवाजा ! इसे मुगल शाहंशाह अकबर ने बनवाया था । हिंदू और मुस्लिम आर्ट का एक बहतरीन नमूना है ।...उधर देखिए, वे कमल के फूल हिन्दू आर्ट के चिन्ह और...

—बहुत खूब ! कमा खाओगे !

—देखो, पन्तू ! यह हर वक्त का मजाक ठीक नहीं । मुझे क्या...

—इसमें मजाक की कौन-सी बात है, यार ? एम० ए० करके ही क्या कर लोगे ? सुबह की गाड़ी से चले आया करो और शाम की गाड़ी से लौट जाया करो । डब्लू० टी० सफ़र करने में तो उस्ताद हो ही । रोज़ दो चार रुपये बक्सीश के भाड़ लोगे !—पन्तू ने तनिक गम्भीर बनकर कहा और सब साथी हँस पड़े ।

—यह मेरा दावा है कि फतहपुर सीकरी के बारे में जितना मैं जानता हूँ, उसका एक अच्छा-खासा गाइड क्या, स्वयं अकबर भी न जानता होगा । आखिर तीन महीने तक यहाँ के खँडहरों में रहा हूँ, इसके बारे में कितनी ही किताबें पढ़ी हैं । इसका एक-एक पत्थर मेरा जाना-हुआ है, चप्पा-चप्पा पहचाना हुआ है । मेरी आँख पर पट्टी बाँध दो और

कहीं भी ले जाकर खड़ा कर दो, मैं दीवारों पर हाथ फेरकर बतला दूँगा कि मैं जोधाबाई के महलों के अन्दर हूँ या बाहर पंचमहले के ऊपर हूँ या नीचे; दीवाने-आम में हूँ या दीवाने-खास में; सीपों से बने चिश्ती की दरगाह में हूँ, या शाही घुड़साल में। चाहो तो इस्तहान ले लो।

—इसीलिए तो कहा था...

—अच्छा साहब, तो पहले आप ही बख्शीश दीजिए !

—पन्नु की ओर हाथ फैलाते हुए मैंने कहा।

—मिलेगी, जरूर मिलेगी, पर बाद में !—गनी ने पीछे से ऊँट जैसी गरदन आगे निकालकर कहा और दाँत दिखा दिये।

—आदमी काम का है, इसमें कोई शक नहीं !—
पन्नु ने फिर छुटकी ली।

सब साथी हँस पड़े।

अब यह मेरे बर्दाश्त के बाहर हो गया। मेरे इतिहास के ज्ञान का यों मजाक बनाया जाय !

—तुम अपने को क्या समझते हो ?—मैंने कहा और मेरे तेवर चढ़ गये, आँखों का रंग बदल गया, चेहरा गुस्से से तमतमा उठा।

मिन्न-मंडली को जैसे साँप सूँघ गया। सब मेरी आदत से परिचित हैं। मेरा दिमाग जल्दी गरम हो जाता है और फिर ऐसा गरम होता है कि दूर में ठन्डा होता है।

मैं बाईं ओर की सीढ़ियों से बाबड़ी की ओर नीचे उतरने लगा।

—क्यों, भाई, अन्दर नहीं चलोगे ?—श्याम ने दबे स्वर में पूछा ।

मैं चुपचाप सीढ़ियाँ उतरता ही गया । वे सब जान गये कि पारा अभी चढ़ा हुआ है । वे चुपचाप अन्दर चले गये और मैं नीचे, बावड़ी के किनारे के पत्थर को पकड़-कर खड़ा हो गया ।

सामने कुछ लड़के लंगोट बाँधे बार-बार बावड़ी में कूद रहे थे । मैं अपने विचारों में खोया था । यह अच्छा नहीं किया, जरा-सा मजाक का बुरा नहीं मानना चाहिए । गनी क्या सोच रहा होगा ? पर इसमें सब मेरा ही तो कसूर नहीं है । उन्हें भी तो नहीं चाहिए कि मेरी हर बात को मजाक में उड़ा दें । आखिर मजाक की भी तो एक हद होती है । जब देखो तब मजाक, मेरे मिजाज का भी ख्याल नहीं करते ।

बाबूजी ! दो आने में एक उछाल लगाऊँ ?

सहसा मुझे सुनायी पड़ा । अब तक मेरा पारा उतर चुका था । सामने एक चौदह-पन्द्रह साल का लड़का खड़ा था । उसका रंग साँवला, बाल काले और घुंघराले थे, गले में काले डोरे से बंधा एक ताबीज था । नंगी देह, कमर में केवल एक गीली लंगीट, जिससे पानी की बूँदें टपक रही थीं । बावड़ी से अभी-अभी निकलकर आया था ।

—क्या है ?—मैंने जरा रुखे स्वर में पूछा ।

लड़का जरा सहम गया ।

—क्या बात है ?—अबकी जरा हँसते हुए मैंने पूछा ।

बाबूजी, आपका हुक्म हो तो एक उछाल लगाऊँ सिर्फ

दो आने में । उसने दो उँगलियाँ दिखाते हुए कहा ।

—कहाँ से लगाओगे उछाल ?

—वह सामने के पत्थर पर से । और अगर आप ज्यादा बख्शीश दें, तो ऊपर के कंगूरे से भी उछाल लगा सकता हूँ ।

—किस दर्जे में पढ़ते हो ?

यह प्रश्न सुनकर वह भौंचक्का-सा मेरी ओर देखने लगा । फिर उसकी नजरें ऐसी बदलीं, जैसे वह मुझे सूखी समझता हो कि बाबू होकर भी मुझे इतनी समझ नहीं । और फिर वह आँखें भुकाकर मौन हो गया, जैसे शरमा गया हो ।

—पढ़ते नहीं हो क्या ?—मैंने ही पूछा ।

—अब नहीं पढ़ता, बाबूजी ।

—पहले पढ़ते थे क्या ?

—जी हाँ, बाबूजी । जब वालिद थे, तब मैं मदरसे जाया करता था । अब तो खुदा ने उन्हें बुला लिया ।—उसने ऊपर को उँगली उठाते हुए कहा ।

—ओह ! मेरे मुँह से सहसा निकल गया । फिर पूछा—
तुम्हारे कोई बड़ा भाई भी तो होगा ?

—था तो, पर गुजरे महीने वह भी चल बसा !—बाबूजी के गहरे, नोले, काई लगे पानी की ओर देखते हुए उसने कहा ।

—तो अब क्या करते हो तुम ?

—यही खानदानी पेशा ।

—खानगानी पेशा ? क्या माने ?—मैंने कुछ न समझकर पूछा ।

अब तक उसकी झिझक मिट चुकी थी । वह खलकर

बोला—जी हाँ, यह उछाल लगाना ही हमारा खानदानी पेशा है। जब से मैंने होश सँभाला, उछाल लगा रहा हूँ। पुस्त-दर-पुस्त हम इसी बावड़ी में उछाल लगाते चले आ रहे हैं। इसी बावड़ी में हमारे दादा की कब्र बनी, और वालिद की भी। गुजरे महीने भाई जान भो इसी में दफन हो गये। बाबूजी, इस बावड़ी के गहरे पानी में हमारे कई पुस्त पड़े सो रहे हैं।—कहते-कहते उसकी आंखें भर आयीं।

—फिर भी तुम उछाल लगाते हो, डर नहीं लगता ?

—काहे का डर ? मेरे गले में यह वालिद का दिया हुआ तावीज जो पड़ा है !—उसने काले डोरे में बँधी एक मैली काली गाँठ को दिखाते हुए बड़े विश्वास-भरे शब्दों में कहा।

—तावीज तुम्हारे भाई और वालिद के पास भी तो रहा होगा ?

—वालिद के तावीज को एक फिरंगी ने एक बार छू लिया था, इससे वह नापाक हो गया था। भाई जान का तावीज एक दिन पहले टूट गया था। नही तो, बाबूजी, तावीज रहते क्या मजाल कि कुछ हो जाय।

—तुम्हारे घर में अब कौन-कौन रह गया है ?

—मैं, एक बहन और वालिदा, बस। बहन भी अगले साल जुदा हो जायगी।

—क्या वह भी...

वह हँस पड़ा।

—नहीं, बाबूजी। अगले साल हम उसका ब्याह कर देंगे। इस साल जरा हाथ तंग है, नहीं तो इसी साल उसका ब्याह कर

देते । फिरंगी यहाँ आते जाते थे, तो अच्छी आमदनी हो जाती थी । पाँच-पाँच रुपये एक-एक उछाल के दे देते थे, बाबूजी ! वालदा कहती हैं कि इस मुराज ने तो हमें पीस डाला है । ऐसे बुरे दिन कभी नहीं रहे हमारे ।

—अच्छा, यह लो एक रुपया ।

रुपया पाकर वह नाचने लगा और दौड़ा-दौड़ा जाकर ऊपर कंगूरे पर पीछे के रास्ते चढ़ गया ।

मैंने जो उसे इतनी ऊँचाई पर देखा, तो मेरा दिल धक-से कर गया । मैंने एक जोर की आवाज दी—नहीं नहीं, वहाँ से न कूदना !

तभी एक जोर का छपाका हुआ और पानी में एक भँवर उठ गयी ।

इतनी देर में शनी, पन्नू वगैरा भी मेरे पास आ गये थे ।

कमाल है, भाई !—रोहताश ने कहा ।

पर मेरी आँखें बावड़ी के गहरे नीले काई लगे पानी पर टिकी थीं, जहाँ बुजबुजे छूट रहे थे ।

एक मिनट...तीन...पाँच...पर अभी तक वह ऊपर नहीं आया । एक आशंका से मेरा दिल काँप उठा ।

—अरे, दौड़ो ! लड़का डूब गया !—आखिर मैंने जोर से चीखकर पुकारा ।

पुकार सुनकर आठ-दस डूबिये, जो सामने बैठे घूप में अपना बदन सुखा रहे थे, एक साथ बावड़ी में कूद पड़े !

करीब एक घन्टा खोजते-खोजते हो गया । काफी भीड़ वहाँ जमा हो गयी । पर अभी तक उसका पता न था । तभी

एक ओर दो तीखी आवाजें सुनायी पड़ीं । आगे एक बुढ़िया सिर पीटती चली आ रही थी और पीछे एक करीब सत्रह वर्ष की लड़की, पायजामा और एक हरा कुरता पहने, बिना दुपट्टे के, जिसे अपने तन का भी ध्यान न था । वे चीख रही थीं—ओ रशीदे...ओ रशीदे !...

पास आकर वे भी हाय-हाय करती बावड़ी में कूदने लगीं, पर पास खड़े लोगों ने उन्हें पकड़ लिया ।

दो घण्टे बाद आखिर एक आदमी ने रशीद को पानी में से बाहर निकाला । रशीद का पेट फूलकर कुप्पा-सा हो गया था, पर उसके एक हाथ की मुट्ठी अब भी जोर से बन्द थी, और उसमें एक रुपया भिँचा हुआ था ।



हरि कीर्तन

गुसाई जी से यदि कोई कह भर दे कि हरिकीर्तन कब हो रहा है ? तो बस पूछने वाले की आफ़त आ गई । वह गालियां सुनने को मिलतीं कि फिर और कोई गाली, गालियों के शब्द कोष में न रह जाती । गुसाई जी फिर वे रिश्ते स्थापित करते कि और कोई रिश्ता बाकी न रह जाता । लोगों और खास तौर से बच्चों को शायद उनसे गालियां सुनने का और अपने रिश्ते स्थापित कराने का शौक रहता, इसीसे से जहाँ बच्चों ने गुसाई जी को देखा कि पूछना शुरू किया... “हरिकीर्तन कब होगा ?” अथवा “हरिकीर्तन में नहीं चल रहे गुसाई जी ।”

गुसाई जी हरि कीर्तन के नाम से क्यों इतना चिढ़ते हैं इसकी भी अपनी एक कहानी है, जो गुसाई जी के हृदय में हमेशा एक टीस उठाये रहती है, पर वही दूसरों के मनोरंजन का साधन बनी हुई है ।

गुसाई जी देखने में पूरे गुसाई जी हैं, घुट मुंड खोपड़ी पर एक हाथ लम्बी काली शिखा, जिसे जबरदस्ती बांध बूंध कर छोटी उंगली के बराबर कर दिया गया, खड़ी उनके ब्राह्मणत्व का झण्डा ऊंचा किये रहती, चौड़े ललाट से लेकर लम्बी नासिका तक इधर उधर पीला और बीच में

लाल तिलक उनके पूरे वैष्णव होने का दूर से ही परिचय दे देते । नंगे बदन पर छाती और भुजदंडों पर लगा चन्दन, तथा दाहिने स्कन्ध से पड़ा हुआ ब्रह्म सूत्र, बिना कुछ कहे ही उन्हें द्विज बतला देता, कुछ काली और ऊँची-ऊँची धोती उनकी कार्य व्यस्तता की सूचना देती । विवाइयों से फटे खुरदरे पैर ऋषि मुनियों की याद दिलाये बगैर न रहते ।

गुसाई जी शहर के कोने में बने नाले के ऊपर वाले मन्दिर के पुजारी थे, किसी ज़माने में इस मन्दिर के भी दिन रहे होंगे पर अब दो एक कमरे और देव स्थान ही ठीक है । और कमरे या तो गिर चुके हैं या खड़े-खड़े अपनी अन्तिम सासों गिन रहे हैं । शहर के एक कोने में और नाले के ऊपर होने के कारण कभी कभी ही कोई श्रद्धालु भक्त आ जाता है, अन्यथा मन्दिर में केवल जंगली कबूतरों की गुटर गूं ही सुनाई पड़ती है ।

गुसाई जी को मन्दिर से इतनी आमदनी नहीं कि वे अपने पेट का भी उससे गुजारा कर सकें । अतः वह तड़के ही उठ जाते, और फिर नहा धोकर आरती करके अपने यजमानों के पास सीधा माँगने चले जाते । वहाँ से वह दोपहर को लौट करके आते तब चूल्हा जलाते और फिर रात तक के लिये रोटियाँ सँककर रख लेते । खाना खाने के बाद जो फिर वे पैर तानकर सोते तो बस शाम को आरती के समय उठते । शाम की आरती करके वे फौरन ही पट बन्द कर देते, और फिर अपने जीवन का एक मात्र साथी हुक्के को साथ ले बैठे अपने कमरे में जा पहुँचते

पर सहसा गुसाई जी के दैनिक जीवन में एक बड़ा परिवर्तन आ गया। लोगों ने देखा कि उनके नंगे बदन पर पाप-लीन का कुर्ता आगया, उनकी शिखा अब कड़वे तेल से चुपड़ी रहने लगी, सूखी गड्ढे जैसी आंखें कजरारी हो गई, पैरों में काठ की चट्टियाँ आगई, धोती अब साफ और नीची रहने लगी, और सबसे बड़ी बात की गुसाई जी की कोठरी जो केवल दिवाली पर भड़ती थी अब रोज भड़ने लगी, एक के स्थान पर अब दो खाटें हो गई।

लोगों ने सुना अब गुसाई जी की शादी होने वाली है तो सहसा उन्हें विश्वास न हुआ गुसाई जी से जब लोगों ने अपनी शंका का समाधान करना चाहा तो वे मुस्करा कर चुप हो गये।

धीरे-धीरे यह बात सारे शहर में फैल गई। लोग अब गुसाई जी पर आवाज कशी करने लगे। कोई कहता “क्यों गुसाई जी यह चुपचाप शादी किये ले रहे हो, बरात के वक्त कहीं भूल मत जाना।” और कोई कहता “किस भ्रष्ट में पड़ने जा रहे हो गुसाई जी?” पर गुसाई जी हर एक का उत्तर चुप्पी से देते।

और एक दिन लोगों ने सुना गुसाई जी अपनी नई दुलहन को ले आये। इस बात को पक्की करने के लिये कुछ लोग मन्दिर गये। वहाँ से लौटने पर जो वर्णन उन्होंने किया उससे वहाँ के मन चले समाज में खलबली सी मच गई, गुसाई जी ने शादी की बह भी कवि की कल्पना जैसी सुन्दरी से।

सोने सा गोरा रङ्ग, बड़ी-बड़ी हिरनी जैसी नशीली, भुकी-भुकी आंखें, पतली-पतली नाक, हल्के गुलाबी से कपोल, दो पतले अरुण अधर, सुडौल बाहें,, दो पीन ऊंचे उठे उरज, पतली चार के अंक जैसी कमर, जिसमें चलते समय बल खाने जैसा भ्रम हो और काली घटा से बाल ।

लोगों ने तो यहां तक कह दिया कि न तो शहर में ऐसी कोई सुन्दरी है और न उन्होंने कोई देखी ।

धीरे-धीरे मन्दिर में जाने वाले भक्तों की संख्या बढ़ गई, सुबह व शाम कुछ चहल पहल होने लगीं । भक्त आते बड़ी श्रद्धा से कृष्ण की मूर्ति के सामने आंख बन्द करके सिर भुकाते, जब गुसाई जी का ध्यान उनकी ओर होता तो वे इकल्ली या अधम्रा ऐसे फेंकते, कि उसकी खनखनाहट गुसाई जी के कानों में सुनाई पड़ जाय, और फिर गुसाई जी की कोठरी के सामने से कुछ ठिठकते हुए कनखियों से देखते हुए निकल जाते ।

गुसाई जी अब अधिक प्रसन्न दीखने लगे, वे समझते कि उनकी दुलहन के रूप में लक्ष्मी का आगमन हुआ है और इसीलिये वे उसे लक्ष्मी के नाम से सम्बोधन करने लगे । गुसाई जी भरसक प्रयत्न करते कि वे लक्ष्मी को सदैव प्रसन्न रखें । वे बाजार से उसके शृङ्गार के लिये एक शीशा, कंधा, दस आने वाली क्रीम की शीशी, वासुदेव के यहाँ का बना हुआ सुगन्धित और रङ्गीन नारियल का तेल ले आये थे । लक्ष्मी के पहनने के लिये दो इकलाई की धोतियां लाना भी न भूले थे ।

गुसाई जी का मन अब पूजा में न लगता था। जैसे तैसे घास सी, काटते हुए वे आरती करते, और फिर बड़ी बेकरारी से इसका इंतजार करते कि कब ये भक्त लोग जाय और वे अपनी कोठरी में जाकर बैठ रहें।

लक्ष्मी अपना सारा रूप और यौवन इकलाई धोती में छिपाये, कोठरी के किवाड़ों की ओट में बैठी रहती, आने जाने वालों को बड़ी व्यथा भरी आँखों से किवाड़ों की दरारों में से देखा करती। उसकी हिरनी सी आँखें सदैव पानी से भरी रहती।

जब भक्तों का मन्दिर में आना बढ़ गया तब फिर भक्तों की श्रद्धा भी मन्दिर पर अधिक होने लगी। कुछ श्रद्धालु भक्तों ने मन्दिर की पुताई करवादी। कोठरी में जो जंगला पीछे नाले की ओर था उसमें किवाड़ लगवा दिये गये।

भक्तों ने गुसाई जी के सामने हरि कीर्तन कराने का प्रस्ताव रक्खा, उसका सारा खर्च उन्होंने अपने कन्धों पर उठाने का वचन दे दिया, गुसाई जी एक तो उन भक्तों को नाराज नहीं करना चाहते थे, और फिर सोचा कि इस हरि कीर्तन से कुछ और चहल पहल हो जावेगी। लक्ष्मी का मन बहल जावेगा, कदाचित तब वह प्रसन्न रहने लगेगी।

एक सप्ताह के अखंड कीर्तन का आयोजन होने लगा, सारे हरि कीर्तन का आधा खर्च लाला ब्रजमोहन ने उठाया। टैम्परेरी बिजली की फिटिंग हो गई, गुसाई जी के बहुत मना करने पर भी लाला जी ने उनकी कोठरी में एक बल्ब लगवा दिया और फर्श भी सीमेंट से ठीक करवा दिया।

गुसाई जी के हृदय में लाला जी के प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई। वे बहुधा कहा करते “शहर में यदि कोई श्रद्धालु भक्त है और दानी है तो लाला ब्रजमोहन—देखलो तभी तो भगवान की इतनी देन है कि कुछ ही वर्षों में नगर सेठ बन गये। पहली लड़ाई तक उनका कोई नाम तक न जानता था। और अब कौनसा ऐसा मंत्री है, कौनसा ऐसा अधिकारी है, जो कि शहर में आये और उनका मेहमान न बने। स्वयं का एक मन्दिर है, और एक लड़कियों का इन्टर कालेज। उनका सारा खर्च तो अकेले उठाते ही हैं और साथ में अनेक मंदिरों विधवा आश्रमों, अनाथालयों और अनेक संस्थाओं में दान देते रहते हैं। इस जीर्ण मन्दिर की ओर भी तो केवल उन्हीं का ध्यान गया।”

अखंड कीर्तन आरम्भ हो गया “हरे रामा, रामा रामा, हरे हरे” “हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा, हरे हरे।” की धुनि से वह एकान्त वातावरण गुंजित हो उठा। लाला ब्रजमोहन अपना अधिकांश समय हरि कीर्तन में ही देते। लाला जी का कीर्तन में बैठने का एक निश्चित स्थान था। वे गुसाई जी की कोठरी के ठीक सामने टूटे खम्भे का सहारा लेकर बैठे रहते, उस ओर भीड़ भी अधिक रहती। गुसाई जी की ओर पीठ किये बैठे रहने वालों में या तो वृद्ध होते या फिर वे जिन्हें दूसरी ओर स्थान न मिलता। पर वे भी कभी-कभी गर्दन खुलाने के बहाने अथवा किसी और बहाने पीछे देख लेते। किबाड़ों की ओट से जब कभी चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई पड़ जाती अथवा गोरी गोरी उंगलियाँ बिजली की

तरह चमक जाती तो रामा रामा और कृष्णा कृष्णा का स्वर एक दम तेज पड़ जाता, ग्यारह बजे के बाद भक्त लोगों का जमाव कम होने लगता, और बारह बजते-बजते दो एक वृद्ध और दो एक बाहर से आये साधू रह जाते और तब न तो चूड़ियों की खनखनाहट ही सुनाई पड़ती और न गोरी गोरी उंगलियाँ ही चमकतीं। लाला ब्रजमोहन अपने घर सीधी सड़क से न जाकर गुसाई जी की, कोठरी के पीछे नाले के ऊपर होकर शार्टकट से जाते, पर लोगों का कहना था कि वे घर “लॉग रूट” से जाने वालों से भी देर से पहुँचते।

इधर दो दिन से लाला जी के साथ एक लम्बा तगड़ा पहलवान आता। लालाजी का कहना था कि आज कल उनके दुश्मनों की संख्या कुछ बढ़ गई है, लोग किसी का उत्थान नहीं देख पाते, इधर घर रात को पहुँचना होता है, अतएव एक शरीर रक्षक रखना आवश्यक पड़ गया।

आखिर अखंड कीर्तन का अन्तिम दिन आ गया। सारा शहर कीर्तन में भाग लेने को उमड़ पड़ा। गुसाई जी बड़े परेशान पर बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे थे। अकेले ही इधर उधर इन्तजाम करने भाग रहे थे। एक ओर प्रसाद बटवाने का प्रबन्ध करते तो दूसरी ओर आरती का। “इतने लोग आज आये हुये हैं, यदि इकम्मी-इकम्मी भी आरती में आई तो...बस, इतनी कल्पना करते ही गुसाई जी के सामने बनारसी साड़ी में लिपटी मुस्कराती हुई लक्ष्मी का चित्र आ जाता।

अखंड कीर्तन समाप्त हुआ “ऊं जय जगदीश हरे” की ध्वनि में आरती गाई जाने लगी। जितनी गुसाई जी ने

कल्पना की थी उससे कही अधिक चढ़ोती चढ़ी । एक थाल जब भर गया तो फिर दूसरा थाल लाया गया ।

गुसाई जी प्रसन्नता से फूले नहीं समा रहे थे । “इतना ‘पैसा भी कभी एक दिन में मिल सकता है, इसकी उन्हें कल्पना तक न थी’...यह सब लक्ष्मी के भाग्य से ही तो हुआ, बस फिर इन सबको उसी के चरणों में चढ़ा दिया जायेगा ।”

गुसाई जी एक अपार आनन्द के साथ इकन्नियाँ दुवन्नियों से भरे दो थाल लिये अपनी कोठरी की ओर चले, पैर से किवाड़ों को धक्का दिया । पर वे अन्दर से बन्द थे । गुसाई जी ने इधर उधर देखा । सब लोग जा चुके थे । किवाड़ों पर धीरे से आवाज दी “लक्ष्मी अरे ओ लक्ष्मी” पर कोई उत्तर न मिला । प्रसन्नता का स्थान शंका ने ले लिया । जोर से आवाज दी और किवाड़ों में एक जोर की लात मारी पर न तो अन्दर से कोई आवाज आई और न किवाड़ ही खुले....अब गुसाई जी का माथा ठनका, वे लपक कर कोठरी के पीछे की ओर गये । सींखचा उखड़ा अलग पड़ा था । कमरे में पूर्णतः अन्धकार था । गुसाई जी को समझते देर न लगी एक क्षण में ही अपने चाँदी भरे थालों को बाहर ही छोड़ वे खिड़की में बने रास्ते से अन्दर कोठरी में पहुँच गये । टटोल कर बटन दवाया, पर अंधेरा ज्यों का त्यों बना रहा । कनेक्शन केवल उस रात के १२ बजे तक के लिये था । गुसाई जी पागलों की तरह अंधेरे में इधर उधर हाथ मारने लगे और जोर जोर से चीखने लगे “लक्ष्मी.....लक्ष्मी..... और फिर उसी उन्मत दशा में वे खिड़की से बाहर निकल आये, फटी-फटी आँखों से कोठरी की ओर देखा और फिर

नाले की ओर । नीचे दो थाल चांदी से भरे रखे थे । जब चिड़िया उड़ गई तब दाने का क्या होगा । गुसाई जी ने दोनों थाल उठाकर नाले में फेंक दिये । थोड़ी खनखनाहट होकर फिर चारों ओर निस्तब्धता छा गई ।

कीचड़ के कीड़े

“कलुआ ।”

“हाँ……।”

“अबे चुप क्यों बैठा है ?”

“…………”

“क्यों बे ! ऐसे मुँह लटकाये क्यों बैठा है ? क्या माँ मर गई है ?”

कलुआ की आँखें भर आईं, और टप, टप, टप, बूँदें गिरने लगीं । बुद्धा अभी तक तो मंज़ाक कर रहा था, पर जो कलुआ को रोते देखा तो सकपका गया । ब्रुश और पालिश की डिबिया बाईं तरफ की लटकती हुई भोली में डाल, वह कलुआ के पास जा बैठा, और फिर कलुआ की भोली में से एक मिठाई की गोली निकाल, उसी के मुँह में रखता हुआ बोला ।”

“अबे औरतों की तरह रोता क्यों है, कुछ बतला तो ?”

कलुआ ने मुँह की गोली एक ओर थूक दी । बुद्धा के कन्धे पर सिर टेक कर वह फफक-फफक कर रोने लगा ।

कलुआ न तो रंग का काला था और न बुद्धा अक्ल का बुद्ध । दोनों हम उम्र थे । दोनों की उम्र लगभग चौदह, पन्द्रह वर्ष की होगी । फटी मैली कमीज और वैसा ही मैला चिक्कट पायजामा पहिने दोनों एक साथ रोज ढूँडला से आगरा और आगरे से ढूँडला एक गाड़ी से आते और दूसरी से लौट

जाया करते । कलुआ मुसाफ़िरों को मिठाई की गोलियाँ बेचता और बुद्धा जूतों पर पालिश करता । शाम तक एक आधा रुपया बच ही जाता ।

• आठ आने घर वालों के हाथ पर रखने पड़ते, और ऊपर के बचे पैसे का पान, बीड़ी और सिनेमा हो जाता । घर वालों का भी उनसे वास्ता केवल आठ आने तक का ही था । उन्हें आठ इकन्री रोज़ शाम को चाहिये थीं । इससे अधिक वे कुछ न जानते थे ।

कलुआ रोता ही जा रहा था । बुद्धा भुंभला उठा । कलुआ के कन्धों को झकझोरते हुए बोला—

“अबे कुछ बोलेगा भी या यों ही...”

कलुआ ने अपनी पीठ पर से कमीज हटा दी । मोटी नीली नीली पाँच सात धारियाँ पीठ पर पड़ी हुई थीं । जगह जगह खून छिल-छिला रहा था ।

“बस” बुद्धा ने हँसते हुए कहा और फिर अपनी पीठ पर से कमीज हटाते हुए बोला—

“इधर देख !” सारी पीठ नीली पड़ी हुई थी । कई जगह पर से निकला खून सूख कर जम गया था ।

“देखा, तुमसे अधिक मार पड़ी है कि नहीं, अबे मर्द बच्चा होकर पिटाई से डरता है, तुमसे तो औरतें अच्छी, कले जो अम्मा पर मार पड़ी थी उसे देखता, बापू जो उस पर लाठी लेकर दूटा तो बस अम्मा को तभी छोड़ा जब वह गिरकर आँखें निटेरने लगी । यह तो खैर रही कि सर पर एक लाठी भी न पड़ी । रात भर तो वह कराहती रही । पर

सुबेरा होते ही वह रोज़ की तरह अपने काम काज में लग गई, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।”

“तेरी अम्मा पिटती रही और तूने बचाय तक नहीं, कैसा पत्थर का दिल है तेरा।”

कलुआ ने आँसू पोंछते हुए कहा।

“अबे दिल को देखता कि अपने सर को। अगर एक लाठी भी सर पर पड़ जाती तो मैं आज यहाँ न बैठा होता। जब बीच में न बोला तब तो पीठ का यह हाल हो गया। और अगर बचाने की कोशिश करता तो न जाने क्या हाल होता। पर तू तो कल डेढ़ लेगया था फिर……”

“वही रोज़ की बात। दादा एक अद्धा तो चढ़ाये हुए आये थे, और फिर माँ से एक अद्धे के लिये और रुपए माँगने लगे। माँ के पास कोई टकसाल तो है नहीं, रुपए देने से मना कर दिया, बस फिर क्या था, दादा माँ पर टूट पड़े एक तो माँ की आजकल वैसे ही तबियत खराब, और ऊपर से यह मार। मुझसे न देखा गया। माँ का गुस्सा फिर मेरे ऊपर उतारा गया।”

“अबे तुझे कितना समझाया, बड़ों के बीच में न बोला कर, पर तू तो अपनी अक्ल के आगे किसी की मानता ही नहीं।” बुद्धा ने बड़े गम्भीर होकर कहा। कलुआ चुप रहा। थोड़ी देर तक दोनों बैठे रहे।

फरूखाबाद आगरा पेसेन्जर आने वाली थी। दूँडला। आगरा जाने वाले विद्यार्थी प्लेटफार्म पर इकट्ठे होने लगे। चहल-पहल काफ़ी बढ़ गई। चार विद्यार्थियों का एक

भुण्ड हाथ में फ़ायलें और कुछ किताबें लिये, कलुआ और बुद्धा के पास से निकला ।

“क्यों बुद्धा कुछ सुना है तूने ?” कलुआ ने चुप्पी को भंग करते हुए कहा ।

“क्या ? बुद्धा ने चौंककर पूछा ।

“यही कि सरकार अब लड़कों को मुफ्त पढ़ायेगी । हर एक को अपना लड़का पढ़ने के लिये भेजना ही पड़ेगा ।”

“अरे सरकार तो ऐसा कहा ही करती है । और फिर करेगी भी तो स्टेशन मास्टर के लड़के के लिये या फिर सेठ रूपकिशोर के लड़के के लिये तेरे से कोई पूछने न आवेगा ।” बुद्धा ने पास पड़ी कंकड़ी को उठाकर पटरी की ओर फेंकते हुए कहा ।

“यह बात तो तू ठीक कहता है रे पर मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे लिये क्या कुछ नहीं है ? क्या सब सेठ रूपकिशोर के लड़के के लिए ही है ? क्या हमारी जिन्दगी इसी तरह से गुजरती रहेगी ? क्या हम……”

“अबे छोड़ इस गम को, न जाने कहाँ की बातें ले बैठा । ले बीड़ी पी ।” बुद्धा ने कलुआ की बात को काटते हुए और एक अधजली बीड़ी बढ़ाते हुए कहा ।

“क्या तू नहीं सोचता ? क्या तू नहीं चाहता ?” कलुआ ने बीड़ी का एक कश लगाते हुए बुद्धा से पूछा ।

“सोचता क्यों नहीं । मैं भी चाहता हूँ कि इनकी तरह स्कूल जाऊँ । पर मेरे और तेरे सोचने से होता क्या है । छोड़

इन बातों को देख सिंगल हो गया, फर्खाबाद आ रही है।” बुद्धा ने एक ठंडी सांस छोड़ी और फिर भोली को बगल में ठीक से लटकाते हुए उठ बैठा।

पूर्व की ओर आसमान में धुआँ उठता दीखने लगा, और फिर थोड़ी देर बाद काला इंजन।

प्लेटफार्म पर भगदड़ सी मच गई। कुलियों ने सामान अपने सरो पर रख लिया। लोगों के चेहरे पर एक अजीब घबराहट दीखने लगी। पूड़ी, साग और बरफ वाले तैयार होने लगे। नल पर सुराई भरते हुए लालाजी आधी सुराई भरे ही लौट पड़े, और बड़ी तेजी से पुल की ओर दौड़ लगाने लगे। बुद्धा ने उन्हें बेतहाशा दौड़ते देखा तो धीरे से उनकी टाँगों में अपनी टाँग मार दी। लालाजी के हाथ की सुराई पास खड़ी दो ईसाई लड़कियों के पैरों पर गिरी और स्वयं उनके सामने साष्टांग दण्डवत् करने लगे।

“ईडियट।” छोटी लड़की ने कहा।

“बदतमीज़।” बड़ी लड़की ने दुहराया और फिर दोनों अपनी साड़ी पर पड़े छींटों को रुमाल से पोंछने लगीं।

लालाजी जैसे गिरे थे, वैसे ही हड़बड़ा कर उठ बैठे। यों ओर के घुटने पर की धोती फट गई। घुटनों में से खून निकलने लगा, सफ़ेद बगुला सा कुर्ता धूल में सन गया, माथा गिर गाल छिल गये।

आस पास लोग इकट्ठे हो गये।

“क्या हुआ लालजी?” भीड़ में से किसी ने पूछा।

“अधिक चोट तो नहीं आई।” किसी ने सहानुभूति

दिखाई ।

पर लालजी चारों ओर आँखें फाड़कर देख रहे थे । दूर प्लेटफार्म के सिरे पर कलुआ और बुद्धा दिखाई दिये । लाला जी की आँखों में लाल डोरे आ गये । होठ फड़कने लगे ।

“नीच, कमीने, हरामजादे……” और न जाने कितनी गालियाँ एक साँस में दे बँठे ।

“रहने दीजिये लालाजी, “किसी ने सलाह दी ।

“सालों को अभी ठीक करता हूँ । बीच में से चीरकर दो कर दूँगा । मुझे समझा क्या है । सालों को कच्चा खा जाऊँगा ।” और यह कहते हुए लालाजी कलुआ और बुद्धा की ओर लपके । अभी लालाजी कोई बीस कदम ही गये होंगे कि प्लेटफार्म पर गाड़ी आ गई । अब वे बड़े असमंजस में पड़ गये । कुछ क्षण ठिठके और फिर लौट पड़े ।

सेठानी जी, उनकी लड़की और कुली उनका इन्तजार कर रहे थे । लालाजी को जो इस फटे हाल में वापस लौटते देखा तो सेठानी एक अजीब अन्दाज से हाथों को घुमाते हुए बोली ।

“हाय ! हाय ! क्या हो गया ?”

“कुछ नहीं ?” लालाजी शेर की तरह गुर्ग पड़े । सेठानी जी ने समझ लिया कि मामला जरूर कुछ टेढ़ा है । वे चुप हो गईं ।

प्लेटफार्म के सिरे पर खड़े कलुआ और बुद्धा, दोनों यह सब दृश्य देख रहे थे । जब उन्होंने देख लिया कि लालाजी गाड़ी में बैठ गये तो बुद्धा बड़ी जोर से हँस पड़ा ।

“देखा रे कलुआ, क्या मज्जा आया ।”

कलुआ चुप रहा ।

“अबे फिर तू चुप हो गया । तुझे यह हो क्या गया है ?”

बुद्धा ने कलुआ के सर पर चपत मारते हुए कहा ।

“यह तूने ठीक नहीं किया ।”

“क्या ठीक नहीं किया ।” बुद्धा ने बड़े आश्चर्य से पूछा ।

“यही कि तूने नाहक टाँग मार दी, बेचारे की धोती फट गई, चोट भी लगी होगी ।”

“अबे बड़ा दयावान् बन गया है, धोती की उसके पास कौन कमताई होगी । देखा नहीं, गले में कितनी भारी सोने की जंजीर पड़ी थी । कुरते में सोने के बटन, और दोनों हाथों में दो-दो अँगूठियाँ । पुल के पास खड़ी सेठानी और लड़की तो ऊपर से नीचे तक सोने में जड़ी हुई थी । धोती फट गई सो क्या उसके घाटा आगया । कौन उसने अपने पसीने की धोती पहिनी होगी...।”

“यह सब तो ठीक है, पर तूने ठीक नहीं किया ।”

“नहीं किया ठीक तो रहने दे । अब तू जाकर ठीक करले ।” बुद्धा ने ज़रा तेज स्वर में कहा ।

थोड़ी देर के लिये फिर दोनों चुप हो गये ।

गाड़ी ने सीटी दी ।

“क्यों रे बुद्धा नाराज़ हो गया तू ।” कलुआ ने बुद्धा के गले में एक बाँह डालते हुये पूछा ।

“नहीं तो ।” बुद्धा ने छोटा-सा उत्तर दिया ।

“नहीं कैसे, तेरे गालों में तो हवा भरी हुई है।” कलुआ ने बुद्धा को अपनी ओर कसते हुए कहा।

बुद्धा हँस पड़ा।

“चल जल्दी चल, गाड़ी चलने वाली है।” फर्ह खाबाद पैसेन्जर रेंगने लगी।

“पालिश कराइयेगा बाबूजी।” बुद्धा ने एक शार्कस्किन की बुशशर्ट और समर की पैन्ट पहिने, सज्जन से पूछा।

“कितने पैसे लेगा?” बड़ी बेरुखाई से उत्तर मिला।

“छः पैसे”

“एक आना तो सब लेते हैं।”

“अजी बाबूजी कुछ मत दीजिये, पालिश तो करवा लीजिये।” बुद्धा ने मुस्कराते हुए कहा और जूते के फ्रीते खोलने लगा।

आस-पास बैठे और लोगों के भी जूते बुद्धा ने ले लिये। बुद्धा ने जब पालिश करना शुरू कर दिया तो कलुआ ने अपनी बात छोड़ी। “एक पैसे में चार और एक आने में बीस गोलियाँ लीजिये, खट्टी मीठी गोलियाँ, बच्चों की खिलाइये और खुद खाइये। पसन्द न आये तो थूक दीजिये। जल्दी कीजिये, माल बहुत कम है।”

पर किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी। दुबारा फिर अपनी आवाज दुहराई, पर कोई असर न हुआ। फिर तिवारा आवाज लगाई पर बेकार।

कलुआ धीरे-से बुदबुदाया—“न जाने किसका मुँह देखा है।”

बुद्धा नीची निगाहें किये मुस्करा रहा था। कलुआ ने फिर एक बार अर्थ भरी दृष्टि डिब्बे में बैठे लोगों पर डाली और फिर दरवाजे के पसा जाकर खड़ा हो गया।

खटाखट पटरियाँ बदलने लगीं। ऐत्मादपुर आ गया। बुद्धा ने सब पैरों में जूते पहिना दिये और सबसे पैसे ले डिब्बे में से उतरने लगा। कलुआ नीचे खड़ा था। बराबर के डिब्बे में से वही लालाजी और टिकिट चैकर उतरे। बुद्धा के काटो तो खून न रहा।

“यही हैं वे।” लालाजी ने टिकिट चैकर से कहा और लपक कर बुद्धा की गरदन पकड़ली। इससे पहिले कि कोई कुछ कहे, लालाजी ने पाँच-सात हाथ कसकर बुद्धा में मारे, बुद्धा गिर पड़ा। लालाजी उसकी छाती पर चढ़ बैठे और मुँह में दनादन मुक्के मारने लगे। बुद्धा ने अपनी आँखें बन्द करलीं, मुँह से खून की धार बह निकली।

एक अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई। किसी ने बढ़कर लालाजी को पकड़ा और एक ओर को हटा दिया।

“लालाजी ! शर्म आनी चाहिये आपको एक बच्चे को इस तरह मार रहे हैं।” भीड़ में से किसी ने कहा।

“बराबर वाले से पाला पड़े तब पता चले” भीड़ में से दूसरी आवाज आई।

“क्यों भीड़ लगा रक्खी है ? आप लोग कानून में दखल नहीं दे सकते, हटिये एक तरफ, आप लोग अपने-अपने डिब्बों में जाइये। कोई तमाशा है क्या—अजी दीवानजी, हटाइये इन लोगों को।” भीड़ को चीरते हुए टिकिट चैकर ने अपने

साथ के एक पुलिस के सिपाही से कहा ।

लोगों ने जो टिकिट चैकर और पुलिस को देखा तो इधर-उधर हटने लगे । टिकिट चैकर ने लालाजी की ओर इशारा किया । लालाजी अपने डिब्बे में चले गये । टिकिट चैकर जमीन में पड़े बुद्धा के पास आकर, और उसका एक हाथ को भटका देते हुए बोला—

“अब उठता है कि नहीं ।”

बुद्धा शराबी की तरह लड़खड़ता हुआ उठ बैठा ।

“कहाँ गया रे, तेरा दूसरा साथी” टिकिट चैकर ने बुद्धा से पूछा, और पीछे मुड़कर देखने लगा ।

टिकिट चैकर के पीछे कलुआ सहमे हुए हिरन के बच्चे की तरह दुबका खड़ा था ।

“चल तू भी चल” टिकिट चैकर ने कलुआ की गरदन पकड़ते हुए कहा ।

टिकिट चैकर, बुद्धा और कलुआ दोनों को एक ओर ले गया । पुलिस को सिपाही कुछ पीछे हो गया ।

“निकालो टिकिट, नहीं तो पुलिस के हवाले करता हूँ ।”

पुलिस का नाम सुनते ही बुद्धा धबड़ा गया । टिकिट चैकर के पैरों को पकड़ता हुआ बोला—

“माफ़ कर दीजिये बाबूजी, अब हम कभी नहीं चलेंगे । हम आपका हक़ दिये देते हैं, हमें पुलिस के हवाले न करियो ।”

“अब अक्ल ठिकाने आई, ला निकाल, बुद्धा ने कमीज़ की जेब उलट दी । आठ इकन्नियाँ हाथ पर आ गईं । टिकिट चैकर ने मुट्ठी बाँधकर पीठ के पीछे करली । पीछे खड़े

सिपाही ने अपनी आड़ कर चार इकन्नियाँ उठा लीं ।

“ला बे तू भी निकाल” कहते हुए टिकिट चैंकर ने कलुआ के सामने हाथ फैला दिया । कलुआ के जी में आया कि वह उसके हाथ पर थूक दे और कहे कि “लो चाटो इसे” पर वह चुप रहा “निकालता है कि पुलिस के हवाले करूँ ।” टिकिट चैंकर ने फिर अपनी बात दुहराई । “मेरे पास एक पैसा नहीं है ।” कलुआ ने दृढ़ शब्दों में कहा ।

टिकिट चैंकर ने एक हाथ कसकर कलुआ के मुँह पर मारा । कलुआ का सर भन्ना गया ।

“कैसे नहो है, निकाल, नहीं तो करता हूँ पुलिस के हवाले” कहते हुये टिकिट चैंकर ने फिर कलुआ के सामने हाथ फैला दिया । कलुआ ने टिकिट चैंकर के फैले हाथ पर थूक दिया ।

टिकिट चैंकर विजली की तरह लपक कर एक कदम पीछे हटा और फिर उछलकर एक लात मारी । कलुआ गिर पड़ा । पुलिस के सिपाही ने भी एक ठोकर मारी । कलुआ चीख उठा ।

“हाँ मारो ! जी भर कर मारो । हमारी जिन्दगी ही पिटने के लिये है । हम कीचड़ के कीड़े जिनका जिंदा रहना बेकार । मारो, हाँ मारो……”

एक ओर से टिकिट चैंकर ठोकरें मारता और दूसरी ओर से पुलिस का सिपाही । कलुआ फुटबाल सा इधर उधर लुढ़कता ।

बुद्धा बचाने के लिये जो पास आया तो सिपाही का एक ऐसा भरपूर हाथ पड़ा कि वह वहीं बैठा रह गया ।

कलुआ बेहोश हो गया था । उसके नाक और मुँह में से खून की लकीरें बह निकलीं दो दांत टूटकर दूर जा गिरे । गाड़ी ने सीटी दी ।

“कमीने, हरामजादे, कीचड़ के कीड़े, सालों ने मुझे भी लाला समझा था” माथे का पसीना पोंछते हुये टिकट चैकर ने कहा ।

गाड़ी चलदी । टिकट चैकर और सिपाही लपक कर एक डिब्बे में चढ़ गये ।

चढ़ाव और उतार

“जी...लड़की ने इस साल इन्टर की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की है।” विजयसिंह ने बड़े विनम्र स्वर में कहा।

“भाई साफ बात तो यह है कि हमारे घर इतनी पढ़ी लिखी लड़की की गुजर नहीं हो सकती, आप तो जानते ही हैं, कि घर में सौ काम करने पड़ेंगे, जमीदारियाँ तो अब रही नहीं।”

“पर ठाकुर साहब, आप लड़की को देख तो लीजिये, आपके विचार बदल जावेंगे, वह और पढ़ी लिखी लड़कियों जैसी नहीं है, सारे घर का काम अकेले ही कर लेगी।”

“हाँ ! हाँ ! ठीक है, पर हमारे यहाँ गुजर नहीं हो सकती। खैर कहने की ज़रूरत नहीं, कल रामपुर वाले आये थे, बीस हजार नगद दे रहे थे, पर मैंने साफ कह दिया कि २५ हजार से एक कौड़ी कम न होगी। अब आप सोजिए...”

विजयसिंह के पैरों तले की जैसे ज़मीन खिसक गई, वे गिड़गिड़ा कर बोले—

“हैं ! हैं ! आप तो जानते ही हैं कि मैं एक साधारण सा अध्यापक हूँ, मेरे पास २५ हजार तो क्या २५ सौ भी नहीं निकल सकते, केवल लड़की है, आप स्वयं देख लीजिये कुंवर साहब को दिखलवा दीजिये, लाखों में एक है.....”

“हाँ ! हाँ ! क्यों नहीं, क्यों नहीं, लाखों में क्या करोड़ों में एक हो सकती हैं” कहते कहते ठाकुर साहब ने तमाखू की एक चुटकी अपने मुँह में रखी ।”

“जी, पूरे जिले भर में इतनी पढ़ी लिखी लड़की मिलना मुशकिल हैं । इस साल उसे अपने काढ़े हुये शाल पर प्रथम पुरस्कार भी मिला है……”

‘,मिला होगा ।’ ठाकुर साहब ने अनमने होकर कहा ।

“रसोई में तो अपना सानी नहीं रखती ।”

“देखिए मास्टर साहब, मैं तो दो दूक बात जानता हूँ, मुझे लड़की से कोई नौकरी तो करवानी नहीं है । आप तो जानते ही हैं, मैंने लड़के पर कितना खर्च किया है । हर महीने में उसे २५०) भेजता रहा हूँ हिसाब जोड़ लीजिये २५ हजार से कम नहीं बैठ सकता । दो साल एन्ट्रेन्स में फेल हुआ था और तीन साल इन्टर में । इस साल थर्डईयर में रह गया है, खैर अगली साल पास हो जावेगा । हमें उससे भी कोई नौकरी तो करवानी है नहीं, घर में ही इतना है कि संभाले नहीं संभलता । दो हजार बीघे का तोड़ करवाया हुआ है । और……”

“राजा हैं आप, आपकी टक्कर का कौन है इस जिले में, तभी तो कहता हूँ, कि लड़की इसी घर के लायक है ।” विजयसिंह ने बीच में बात काटते हुए कहा ।

“मास्टर साहब ! मैं पच्चीस से कम नहीं ले सकता” ठाकुर साहब ने टका सा जवाब दिया ।

“पर मेरी हैसियत का तो ख्याल कीजिये ।”

“तभी तो कहता हूँ मास्टर साहब, अपनी हैसियत में ही लड़की दीजिये । बड़े घर लड़की दोगे तो बड़े खर्च भी तो करने पड़े गे । मेरी सलाह यही है—कौआ हंसों में शोभा नहीं देता” ठाकुर साहब ने नौसादर और चूना नाक में चढ़ाते हुए कहा और मसनद की टेक लेकर उठ खड़े हुए ।

“सब के दिन बराबर नहीं रहते ठाकुर साहब ।” विजय सिंह का स्वाभिमान जाग उठा ।

“कौआँ के कोसे ढोर नहीं मरते । बस अब आप तशरीफ ले जाइये ।” गुस्से से तरेरते हुए ठाकुर साहब हवेली के अन्दर चले गए ।

(दो)

जेठ की दुपहरी थी, दिन के एक बजे होंगे । सूर्य ने मानों अपनी उदारता का द्वार खोल दिया था । लूह थपेड़े मार रही थीं और उस पर गाँब से शहर को आने वाला कच्चा रास्ता । नीचे बालू आग सी बनी धधक रही थी और ऊपर से शोले बरस रहे थे । विजयसिंह ने अंगोछे को अपने सिर पर ठीक किया और अपने सूखे होठों पर जीभ फेरी । गर्मी से गला चटक रहा था ।

“बड़ी गर्मी है ।” साफी से मुह पौछते हुए विजयसिंह ने कहा ।

अपनी चिरपरिचित प्याऊ पर आकर पानी पिया और ठन्डी साँस लेकर बिजयसिंह आम के पेड़ के नीचे बैठ गये । विजयसिंह को देख कर पानी पिलाने वाले की बाँछें खिल

गईं—अब मास्टर साहब से दीन-दुनिया की बात पूछेगा ।

“अरे मास्टर साहब गर्मी है कि आग बरस रही है आग, साये में सस्ता कर जाईयेगा ।” और फिर पानी पिलाने वाले ने विजयसिंह के सत्कार में चिलम भरते हुए कहा—

“अभी चिलम भर रहा हूं ।”

“मेरे पास बीड़ी हैं, लो बीड़ी पियो ।” विजयसिंह ने एक बीड़ी बढाते हुये कहा ।

बीड़ी के पहले धुँए के साथ ही पहिला सवाल हुआ—

“क्यूँ मास्टर साहब सुना है आजकल कांग्रेस हार रही है ।

“हूँ ।” छोटा सा उत्तर देकर विजयसिंह अपने विचारों में खो गये ।

“हारते जा रहे हैं फिर भी आँखें नहीं खुलतीं ।”

“अभो क्या, आँखें तो इकट्टी खुलेंगी ।”

अपने विचारों में मशगूल विजयसिंह बोले ।

“क्यों साहब, कुछ ऐसे भी लोग हैं जो धर्म और भगवान को नहीं मानते ।

“हाँ ।” वही छोटा सा उत्तर दिया विजयसिंह ने ।

“नहीं मास्टर साहब, ऐसा नहीं हो सकता । भला बिना धर्म कर्म के समाज रह सकता है । आज जो धरती टिकी है वह धर्म के सहारे ही तो है, नहीं तो वह रसातल में चली जाय । किसी के मिटाये से कभी धर्म मिटा है, रावण जैसे न मिटा सके और किसी की तो हस्ती ही क्या है ।” कहकर उसने विजयसिंह की ओर इस प्रकार देखा जैसे भाषण देने के

बाद नेता अपने सामने के जन समुदाय को देखता है यह देखने के लिये कि उसके एक घंटे की बकवास का क्या असर पड़ा। विजयसिंह के मस्तिष्क में धर्म और जाति को लेकर उथल पुथल होने लगी। वे उसी धुन में उठ खड़े हुये। साफी फिर सर पर बाँध कर कान ढक लिये, चशमा पोंछकर आँखों पर लगा लिया। विजयसिंह शहर की ओर चल पड़े। उनके हृदय में एक तूफान सा मच रहा था वे चढ़ाव पर थे, पानी पिलाने वाले के शब्द उनके कानों में गूँज रहे थे। वे सोच रहे थे। रामपुर के ठाकुर का और मेरा एक धर्म है, एक जाति, पर हम एक नहीं हो सकते। उन्होंने अपना धर्म बना लिया है गरीबों का शोषण और छोटों से नफरत, मेरा धर्म यह नहीं हो सकता। और फिर धर्म है क्या? जीवन के कुछ सिद्धान्त ही धर्म हैं। आज जीवन के साधन बदल गये हैं फिर सिद्धान्त क्यों न बदलें। आज धर्म हैं क्या? केवल चन्द व्यक्तियों का स्वार्थ ही तो धर्म है। सब पैसे की कसौटी पर कसे जाते हैं। मनुष्यता-इंसानियत कुछ नहीं……” आवेश चढ़ता जा रहा था।

“राम राम मास्टर साहब।”

सामने पंडित राधारमण ऐसी गर्मी में एक बड़ा सा साफा बांधे, मलमल का कुर्ता, धोती और पैरों में चमरौधा जूता पहिने खड़े थे।

“कहाँ गये थे मास्टर साहब इस दुपहरी में?” पंडितजी ने प्रश्न किया।

उसी आवेश में विजयसिंह बोले, “मुझसे पूछते हैं आप ?

लड़की को पालो पोसो, पढ़ाओ लिखाओ, घर गृहस्थी की शिक्षा दो और, जब शादी को निकलो तो लड़के वाले के मिज्जाज नहीं मिलते। दस हजार से कम कोई नहीं माँगता। बड़े नवाब हैं रामपुर वाले, लड़की के लिये लड़का देखने गया था। वे सबके आगे बढ़ गये, २५ हजार माँगते हैं। लड़का इस साल घर्डईयर में फेल हो गया है। माना कि बड़ा घर है। पर मेरी लड़की भी तो इन्टर है अगर कहें तो मैं उसे बी० ए० तक करा सकता हूँ, किस बात की कमी है उसमें काढ़ने में बुनने में, पकाने में, देखने में, सुनने में...।”

“अजी लड़की क्या है देवी है देवी।” पंडित जी बीच ही में बोल उठे।

“तभी तो यह देखकर जी चाहता है, आँख मीचकर चाहे जहाँ शादो कर दूँ।”

“शिव शिव, कैसी बातें करते हो मास्टर साहब, अरे लड़कों की कोई कमी है।”

“तो फिर आप ही कोई बताईये न। आप तो पण्डित हैं।”

विजयसिंह ने तीखे स्वर में कहा।

“शान्ति से बात कीजिये। घबराने से कुछ नहीं होगा। पूरनपुर वालों के यहाँ करने का मैं जिम्मा लेता हूँ।”

विजयसिंह इतने आश्वासन पर व्यवस्थित हुए। अचकचा कर बोले,

“पर लड़का तो मैट्रिक फेल है।”

“अजी मैट्रिक वैट्रिक क्या, उसे कौन सी नौकरी करनी

है, घर पर दो ट्रैक्टर हैं।”

“और रंग……” हकलाते हुए विजयसिंह ने कहा।

“अरे बाह मास्टर साहब रंग मैं जरा साँवला है तो हम और आप ही कहाँ के गोरे हैं।

“पर उम्र भी तो अधिक लगती है।”

दोहरा डील है इसीलिये ज्यादा लगता है। पार साल ही तो पहली स्त्री मरी है पहली स्त्री के एक लड़का ही तो है। कल ही धीरपुर वाले आये थे, अपना लड़की के लिये पर उन्होंने साफ मनाकर दिया, बोले—रुपया पैंसा तो हाथ पैर का मैल है, मेरे ही यहाँ कौन कमी है। लड़की सुशील होनी चाहिए। अब बोलिये आपका क्या विचार है। लड़का मेरी मुट्ठी में समझिए।

“फिर भी रुपया……”

“वैसे तो उनके लिये बीस हजार भी थोड़े हैं, पर जब मैं बीच में पड़ूंगा तो कौड़ियों में काम हो जायगा।” चुटकी बजाते हुए पंडित जी ने मूँछों पर ताव दिया।

“फिर भी……”

“यही, पाँच हजार” पण्डित जी ने ऐसे कहा जैसे पाँच हजार कुछ होते ही नहीं।

“पाँच हजार?” विजयसिंह का गला रुँधने लगा। आवेश उतरने लगा था।

“आपके एक ही तो लड़की है। शहर का मकान किस दिन काम आवेगा। जमीन जायदाद ऐसे ही मौकों पर तो काम आती है।” पण्डित जी ने सलाह दी।

विजयसिंह उतार पर थे । चहरे पर रंग आते और जाते सोचने लगे—

“और कोई रास्ता भी तो नहीं । आखिर लड़की की शादी तो करनी ही है । पिता जी ने भी तो बहिन की शादी पर घांघरपुर बेच दिया था । और कोई रास्ता ही न दीखता था । तीन साल हो गये लड़का देखते देखते, जहाँ जाओ वहाँ दस हजार और बस हजार । अब है ही कौन ? केवल लड़की ही तो है । रहे दो प्राणी से जिन्दगी कट ही जावेगी किसी तरह ।

“अच्छा पंडित जी अगर उसको यही मंजूर है तो फिर यही सही ।” कहते कहते विजयसिंह ने एक ठंडी साँस ली ।

“मेरा भी ध्यान रहे मास्टर साहब” पण्डित जी खीस निपोर कर बोले

विजयसिंह शून्य की ओर देख रहे थे और सोच रहे थे— मेरे तो एक लड़की है अपने को बेचकर भी सम्बन्ध कर ही दूंगा पर जिनके पाँच सात होती हैं वे क्या करते होंगे । विजयसिंह की आँखें गीली हो आईं और दो पानी की बूँदें दुलक कर तपी हुई बालू पर पड़ी । गरमी का मौसम था ।

अर्थी

“खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो, जाओ जल्दी दाई को बुला लाओ बहू की हालत खराब है।” पड़ौस की बुढ़िया ने पास खड़े विजय से कहा।

विजय ने जो यह सुना तो जैसे उनके पैरों तले की ज़मीन निकल गयी। एक तो पहिले से ही परेशान और उस पर सुना कि उसकी पत्नी की हालत खराब है तो रहे सहे औसान भी जाते रहे ! नंगे पैर ही, एक सांस में जीना उतर गली में आ गया !

दो बजे होंगे, रात के सन्नाटे में रह-रह कर कुत्ते भूँक उठते ! विजय गली में जो आया तो सहसा चार पाँच कुत्ते एक साथ भूँक उठे !

“खबरदार जागते रहो”

की आवाज़ गली के नुक्कड़ से आयी ! विजय को केवल अनुमान था कि दाई का मकान चौराहे के पास वाले नगले में है, उसी अनुमान के सहारे उसने अपने कदम जल्दी-जल्दी बढ़ाने शुरू कर दिये ! सामने से चौकीदार सीधे हाथ में लाठी और बायें हाथ में एक धुंधली सी लालटेन लिए चला आ रहा था। विजय के पास आकर जरा ठिठका और फिर चेहरा देखने के लिये लालटेन उठाई।

“दाई किधर रहती है पता है कुछ आपको।” विजय ने

पूछा—आखिर मुहल्ले का चौकीदार है शायद जानता हो !

“उधर चौराहे से नगले में उतर जाना, आखिर में जो कच्चा मकान है, दाँये हाथ की ओर—वह दाई का ही है ! क्या जरूरत पड़ गई इतनी रात को ?” चौकीदार ने लालटेन को नीचे लाते हुए कहा !

विजय से कोई उत्तर न बन पड़ा ? वह चुपचाप चौराहे की ओर चल दिया—चौकीदार मुस्करा उठा जैसे वह सब समझ गया हो ।

विजय तिराहे पर जाकर ठिठका, और फिर बाईं ओर से मुड़ गया, अपने कदम और तेज कर दिये, गली खतम हुई, विजय चौराहे पर पहुँच गया, चौराहे के कुत्ते एक दम भूँकने लगे ! सामने से गश्त लगाती हुई सिपाहियों की एक टोली आ रही थी । टोली में से दूर से ही किसी ने आवाज लगाई—“खड़े रहो ! कौन है ?” विजय सुनी-अनसुनी कर नगले में उतरने लगा । फिर दुबारा आवाज आई—“कौन है ? खड़े रहो !” विजय रुक गया । टोली पास आ गयी, किसी ने उसके चहरे पर टार्च फेंकी ! दीवान जी ने रौबिली आवाज से पूछा—

“कहाँ जा रहा है ।”

“एक काम से जा रहा हूँ ।”

“क्या काम है रात के दो बजे ?”

दीवान जी ने फिर कड़क कर पूछा ! विजय गश्त के दीवान के असभ्य व्यवहार से खीज उठा था ।

“कहीं भी जा रहा हूँ, तुम्हें, मतलब ?” वह अभी इतना ही कह पाया था कि पीछे से तड़से एक चाँटा पड़ा, सामने से एक हाथ कस कर दीवान जी ने मारा ।

“हरामजादा, हमसे पूछता है मतलब ?” विजय को इस व्यवहार की स्वप्न में भी आशा न थी । उसकी समझ में कुछ न आ रहा था, वह एक दम नाले की ओर भाग निकला । जोर जोर से सीटियाँ बज उठीं, सामने से न जाने कहाँ से चार सिपाही आगए विजय पीछे की ओर लौट पड़ा, दीवान जी कोई पाँच सात सिपाहियों के साथ चले आ रहे थे । लाचार होकर विजय खड़ा हो गया ! दीवान जी ने आते ही दो हाथ कस कर जमा दिये, पीछे से एक सिपाही ने कमर पकड़ ली चारों ओर से लात धूँसे पड़ने लगे ! विजय ने अपना सिर नीचे कर लिया । किसी सिपाही का भरपूर हाथ जो नाक पर पड़ा तो आँख के सामने अँधेरा सा आ गया, विजय ने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—“दीवान जी ! मेरी बात तो सुन लीजिये . . .”

“पहिले हमारी भी तो सुन ले” एक सिपाही ने अश्लील-तम गाली देते हुए कहा और पेट में एक जोर की लात मारी । विजय गिर पड़ा-नाक से खून की लकीर बह निकली ।

“चरनसिंह ! साले की तलाशी लो ।” दीवान जी ने हाँफते हुए कहा ।

दो तीन सिपाहियों ने विजय को पकड़ कर उठाया । कपड़े तार-तार हो गए थे ! तलाशी ली गयी मगर कुछ न

निकला । दीवान जी ने अपनी खीज मिटाने के लिये एक भट्ठी सी गाली देते हुए कहा “...नकब लगाने चले थे ।” और एक हाथ कस कर मारा । विजय की नाक और मुँह से दो बारीक लाल-लाल धारारें बह निकलीं । आँख बन्द करते हुए, दोनों हाथ जोड़ते हुए धीरे से कहा—

दीवान...जी...मेरी...एक...बात तो सुन लो ।

“साले तेरी बात इकट्ठी सुनी जायेगी...”

इस मार पीट और पुलिस की गाली गलौज से आसपास के घरों में जगाहर हो गयी । ऊपर से किसी ने पूछा—

“क्या बात है दीवान जी ।”

“कुछ नहीं वकील साहब, कुछ बदमाश थे, एक पकड़ लिया है, आप बेखटके आराम कीजिए ।”

वकील साहब ने खट से किवाड़ बन्द कर लिए । भला बाहर जब पुलिस है फिर किस बात का डर ।

“ले चलो...को थाने ।” दीवान जी ने एक गन्दी गाली देते हुए हकूमत भरे स्वर में कहा ।

“दीवान जी ! मेरी पत्नी की हालत खराब है मैं दाई को बुलाने जा रहा...”

एक जोर का हाथ फिर मुँह पर पड़ा ।

“चल तो...तुझे दाई थाने में बुला दी जायेगी ।”

विजय में अब और मार सहने की ताकत न थी । वह भली भाँति जान गया था कि सफाई देने का मतलब है थोड़ी और गालियाँ लात धूँसे ! बिना आनाकानी किये चलना ही उचित समझा ।

चार सिपाही विजय को लेकर थाने में दाखिल हुए। थाने में चारों ओर से सन्नटा था।

आफिस में डेक्स पर रखी लालटेन धुँधला-सा प्रकाश दे रही थी। पास में ही मुँशी पड़ा खरटि ले रहा था। दरवाजे का संतरी बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। एक सिपाही ने बरामदे में से ही आवाज़ दी—

‘अजो दीवान जी ! दीवान जी ! हवालात की चाब तो देना।’

‘क्या है ? रात को भी चैन नहीं, न जाने कहाँ से चले आते हैं।’ वही एक भद्दी और अश्लील गाली देते हुए कहा।

‘अजी ताली तो दे दो, एक सौ नौ में लाये हैं।’

‘कितने हैं।’

‘एक।’

‘बस एक ही...! अब कल आखिरी दिन है रिपोर्ट भेजनी है फिर भी एक ही लाए ! हम हैं कि आदर्श थाना बनाने के लिए दिन-रात एक कर रहे हैं और एक तुम हो कि एक सौ नौ वाले भी नहीं बढ़ाए जाते, क्या खाक बनेगा आदर्श थाना।’

‘अजी क्या फिकर करते हो दीवान जी, अभी तो दो घंटे बाकी हैं, सुबह होते-होते देख लेना हवालात भरी पोओगे...’

आदर्श थाने का जो नाम सुना तो विजय चौंक उठा। उसने ‘आदर्श थाने’ के बारे में कई बार तारीफें पढ़ी थीं !

‘यह देखिए दीवानजी ? कोई न्याय है, मेरी घरवाली की हालत खराब है, मैं काम से जा रहा था, ये यहाँ ले आये,

मैं इसकी रिपोर्ट हाई आफिशियल्स में करे वगैर नहीं रह सकता। यह भी कोई मजाक है ?.....'

'अभी साले का दिमाग ठीक नहीं हुआ। कहते-कहते एक सिपाही ने पास पड़ी रौल उठाकर उसकी पीठ पर जमा दी। विजय केवल एक आह करके रह गया। मुन्शी ने भी उठकर एक हाथ जमाते हुए कहा—

“...मालूम है यह थाना है थाना, सब आटे-दाल का पता लग जायेगा, बड़े-बड़े यहाँ आकर सीधे हो जाते हैं, चल उठ !’ कहते-कहते एक ठोकर लगायी उठाने के लिए, पर वह और गिर पड़ा ! एक सिपाही ने एक लात और जमा दी। ‘साला मक्कूर करता है।’

विजय शराबी की तरह लड़खड़ा कर उठ खड़ा हुआ। हवालात का दरवाजा खोलकर एक जोर का धक्का दिया विजय मुँह के बल अन्दर गिर पड़ा, फिर खटसे एक आवाज हुई, लोहे के किवाड़ बन्द हो गये। अन्दर चारों ओर अंधेरा था। मारे दुर्गन्ध के साँस लेने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। वह सीखंचे पकड़ कर नाक बाहर निकाल खड़ा हो गया, कुछ साफ और ताजी हवा मिली तो थोड़ा चित्त ठिकाने आया ! वह सोच रहा था—कैसे हैं जनता के ये सेवक ? ‘...आदर्श थाना और एक सौ नौ। क्या सम्बन्ध है दोनों में ?’ उसकी समझ में कुछ न आ रहा था। “मारे प्यास के गला चटका जा रहा है पर कौन सुनेगा यहाँ पर ! सुबह होने दो—इन्स्पेक्टर तो पढ़े-लिखे और सभ्य होंगे, उनसे पूछूँगा—कि यह है आपकी जनता की सेवा ? यह है आपके आदर्श थाने की कर-

तूत और अगर इन्स्पैक्टर भी ऐसे ही हुए तब फिर · · ? फिर क्या वे जान से तो मार न डालेंगे, आखिर अब हम आज़ाद हैं नौकरशाही के दिन तो अब हैं नहीं · · सोचते सोचते विजय ने सीखचों को और कसकर पकड़ लिया, उसका स्वाभिमान जाग उठा था । नेहरू जी की बोलती हुई तसवीर उसके सामने घूमने लगी ! उसके मस्तिष्क में उनके शब्द—“अब हमारा मुल्क आज़ाद है—हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं—हमें अपने अधिकारों और कर्तव्यों का उचित प्रयोग करना चाहिए ।” गुँजने लगे फिर सहसा ध्यान आ गया घर का—“क्या दशा होगी बेचारी की, हे भगवान अब तुम्हारे ही सहारे है वह—” उसके दाँत किटकिटाने लगे ।

धीरे-धीरे पौ फटने लगी । बाहर बैठे संतरी की ड्यूटी बदल गयी खाकी नेकर और बनियान पहने दाँये हाथ में लोटा लिये सिपाही शौच को जाने लगे ।

धारीधार पायजामा, खाकी कमीज़ और बाटा की चप्पलें पहिने नीम की दातून को मुँह से हटाकर सीखचों के अन्दर ऐसे घूरने लगा मानों बनारसी बाग में बन्द किसी जानवर को देखने का प्रयत्न कर रहा हो ।

“बस एक ही, तब तो बन गया आदर्श थाना” कहकर फिर दातून करने लगा !

छः, सात, आठ, नौ पर दरोगा जी न आये ! लगभग दस बजे दरोगा जी बगल में कुछ फ़ाइलें दबाए, बेंत को अपनी पेंट पर मारते हुए आये और पान की पीक को एक ओर धूकते हुए बोले—

“क्यों दीवन जी कितने आये रात एक सौ नौ में ?”

“एक ।”

“क्या ? एक ! सब हरामखोर हैं, सब कामचोर हैं, सरकारी काम तो किया नहीं जाता और जुए के पैसा के लिए गली-गली फिरेंगे ।”

सब चुप थे । कुर्सी को खींचकर बैठते हुए दरोगा जी ने वही भद्दी सी गाली देते हुए फिर पूछा ।

“....पर निकला कुछ ।”

“तलाशी में तो कुछ नहीं निकला”

“साले को बाहर लाओ ।”

विजय बाहर लाया गया । दरोगा जो ने उसे एक नजर से ऊपर से नीचे तक देखा, गठीला बदन, बाल बिखरे, कपड़े फटे हुए, नाक के पास खून जमा हुआ था ।

“क्यों बे पानी वानी पियेगा ।” दरोगा जी ने वही अफ-सराना अन्दाज़ से पूछा, इससे पहिले वह कुछ कहे दरोगा जी ने जोर से आवाज़ दी—“अरे हरचरण एक लोटे में पानी तो लाना ।”

रात भर का विजय प्यास था ही एक ही साँस में लोटा खाली कर दिया । पेट में हलका सा दर्द हो उठा !

“क्या नाम है तेरा ?”

“विजय कुमार ।”

“क्या करते हो ?”

“मिल में क्लर्क था, पर अब तो मिल बन्द है इसलिये अब आप बेकार समझ सकते हैं ।”

“साफ साफ क्यों नहीं कहता, रात को नकब लगाते फिरते हैं।” उन्होंने वही पुरानी अश्लील गाली देते हुए कहा।

“साबित करना होगा आपको।” विजय तिलमिला उठा।

“यह थाना है थाना ! सब बातें चुटकियों में साबित होती हैं—फ़रीद ! एक माचिस, एक बीड़ी का आधा बन्दल एक मोम बत्ती और एक कील को सुतली में बाँधकर रख दो और दर्ज करदो कि ये तलाशी में बरामद पायीं। रात के दो बजे, तीन साथी थे, दो भाग गये, एक पकड़ लिया गया, पूछने पर अन्ट सन्ट और झूठे जवाब दिये और…”

“क्या कहते हैं दरोगा जी आप, बीड़ी तो पीता तक नहीं और कील मेरे किस मतलब की; भगवान के लिए कुछ तो सच बोलिए।”

“अबे चुप नहीं रहेगा…”

अपनी आदत के अनुसार दरोगा जी ने गन्दी सी गाली देते हुए कहा और फिर दीवान जी से पूछा—

‘गवाही-बवाई क्या है?’

“जी गवाही तो……”

“तो क्या खाक पुलिसगीरी करते हो…दो रिक्शे वालों को पकड़ लाओ सालों को ठीक तरह से समझा देना।”

“दरोगा जी ! यह आप क्या कर रहे हैं ! झूठ और सफेद झूठ को सच्चाई का रंग देना……”

“यों तू चुप नहीं रहेगा…अरे रहमान। ज़रा मिज़ाज तो ठीक करना” दरोगा जी का कहना था कि ताड़ ताड़ पड़ने लगे लात, धूँसे और मुक्के।

विजय की नाक और मुंह में से फिर दो लाल-लाल लकीरें बह निकलीं, वह चीख उठा—

“तुम जनता के रक्षक हो या भक्षक—अरे जालिमों यह आदर्श थाने का ढोंग क्यों? ऐसी सरकार कभी नहीं, टिक सकती जो ऐसी पुलिस पर भरोसा करे। तुम इन्सान नहीं, हैवान भी नहीं हैवान से भी बदतर हो...तुम..., तुम...” और बेहोश हो गया।

थोड़ी देर बाद विजय को होश आया—कमीज से नाक का खून पोंछा, सर भारी सा था ज़मीन पर हाथ टेकते हुए उठने की कोशिश की मगर चक्कर आ गया

‘दीवान जी ! इसे कल अदालत के सामने हाजिर करना। चालान आज की रात का लिखना ! हाथ मुंह धुलो दो, जरा साले को एक रात और मेहमान रखो।’

विजय सोच रहा था विधान की उस धारा कों जिसमें यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति चौबीस घण्टे से अधिक हवालात में नहीं रखा जा सकता पर अब तक के अनुभवों से वह यह भली भाँति जान गया था कि किताबों में कानून कुछ और है थाने में कुछ और। उसने चुप रहना ही ठीक समझा।

रात के लगभग बारह बजे, एक मर्द और एक औरत थाने में लाये गये। विजय हवालात में बैठा अपनी पत्नी के विषय में सोच रहा था तभी जो उसे एक नारी कण्ठ सुनाई पड़ा तो उठकर सीखचों के पास आ गया।

स्त्री कह रही थी—“अजी दीवान जी, पाँवों पड़ती हूँ तुम्हारे में उनकी ब्याहता हूँ। रात को कहाँ जाते इतने बड़े

शहर में ! दिन में अस्पताल में भरती नहीं हो पायी थी, रात भर काटने के लिए ठहर गये थे.....”

दीवान जी ने दाँत निकालते हुए भदे से स्वर में कहा, “हरामजादी ! भाग आयी है इसके साथ—सुबह तहकीकात करने के बाद छोड़ी जायेगी ।”

“कुछ जरूर दाल में काला है दीवान जी ।” एक सिपाही ने पैनी निगाह से औरत की ओर देखते हुए कहा ।

बीमार आदमी को हवालात में बन्द कर दिया गया । औरत को दीवान जी अन्दर ले गये ।

शराब की बोतलें आयीं, सोडा आया, बरफ आयी फिर कुछ छीना-भपटी की आवाज, एक चीख, दीवान जी का अट्ट-हास फिर खटपट गिलास गिरने की आवाज और चूड़ियां टूटने की आवाज आयी ।

विजय का जी चाह रहा था कि वह सींखचों को तोड़ दे और सबका गला घोट दे और कहे—तुम्हारी भी माँ हैं, बहिनें हैं, पत्नियां हैं, इज्जत है पर सब बेकार । कानों में जोर से अंगुलियाँ डाल लीं और अंधेरे में, आँख बन्द कर कोने में दीवाल की टेक ले बैठ गया ।

सुबह हुई तब उन दोनों में से कोई न था । दीवान जी सींखचों के पास आकर सहानुभूति के स्वर में बोले—कुछ खाएगा—भूख लगी होगी ।

विजय ने नफ़रत की निगाह से देखा और मुँह फेर लिया ।

“साले के अब भी दिमाग ठीक नहीं हुए” दीवान जी हंस

उठे। विजय को उस हँसी में एक निस्सहाय, गरीब, लाचार श्रबलाकी चीख सुनायी दी, वह चीख जो एक नौजवान के खून को खोलाने के लिए काफ़ी थी।

दस बजे के करीब, विजय के हाथ में हथकड़ी पहनायी गयी, कमर में एक रस्सा बाँधा गया, बराबर की हवालात में से चार आदमी और निकाले गए, तीन सिपाही साथ कर दिए गये। दरोगा जी ने कुछ कागज़ एक सिपाही को देते हुए थोड़ी-बहुत बातें समझायीं ! वह उन पाँचों को जानवरों की तरह हाँकते हुए कलक्टरी ओर ले चले।

विजय जान गया था कि खुशामद से यहाँ सब कुछ हो सकता है। रास्ते में एक सिपाही से बोला 'दीवान जी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, रास्ते में चौराहे की पास वाली गली में मेरा मकान है। मेरी घरवाली को हालत खराब है, अगर आपकी मेहरबानी हो जाय तो उसे देख भर लूँ, भगवान तुम्हारी तरक्की करेगा।'

सिपाही ने जो अपने को दीवान जी कहते सुना तो फूल कर कुप्पा हो गया मूँछों पर ताव देते हुए बोला—“तू भी क्या याद करेगा कि कोई मिला था, जा मिल आना।”

बिजय चौराहे पर पहुँच कर जो गली की ओर मुड़ा तो सामने से एक अर्थी आती दीख पड़ी। उसका दिल धड़कने लगा। अर्थी को उसका पड़ोसी कन्हीं, यूनियन के सेक्रेटरी महेश, उसका चचेरा भाई ज्ञान और उसकी कोठरी के पास वाले नये बाबू उठाये ला रहे थे। उसे समझते देर न लगी।

अपना मुँह पास खड़े साथी की पीठ के पीछे छिपा लिया । तभी उसे सुनाई दिया कोई कह रहा था 'दाई को बुलाने ऐसा गया कि अभी तक लौट कर नहीं आया मरते मरते बेचारी के मुँह पर उसी का नाम था ।'

धीरे-धीरे विजय ने अपना मुँह ऊपर उठा था—अर्थी दूर जा चुकी थी, वह फफक उठा और चीख उठा—

'मैं नहीं चाहता कि मुझे छोड़ा जाय, मैंने नकब लगायी चोरी की डाके डाले, खून किए, चढ़ा दो मुझे फासी पर, मुझे जिन्दा नहीं रहना....'

सिपाही भोंचक्के होकर उसकी ओर देखने लगे, उनकी समझमें कुछ न आ रहा था ।

ऐमरजैन्सी

“अच्छा हो भाई साहब, यदि आप गुड्डी को ऐमरजैन्सी ले जावें।” कुलदीप ने बड़े सहानुभूति भरे शब्दों में कहा।

घर की और गुड्डी की हालत देखते हुए कोई भी समझदार व्यक्ति यही सलाह देता।

गुड्डी की हालत क्षण-क्षण खराब होती जा रही थी, हर तीन या पाँच मिनट बाद दौरा पड़ जाते। जैसे ही दौरा पड़ने को होता गुड्डी की आँखें एक दम फट जातीं, बदन धीरे-धीरे कांपने लगता, मुट्ठियाँ कसकर बन्द हो जातीं, दांत इतने जोर से बन्द हो जाते कि चम्मच से तो क्या संड़ासी से भी नहीं खुल पाते, धीरे-धीरे बदन का रंग बदल कर नीला पड़ जाता, आँखें फिर जातीं, ऐसा लगता कि गुड्डी तब गई कि अब।

बात बड़ी मामूली सी थी। गुड्डी को पहिले मामूली खाँसी थी, फिर वह मामूली खाँसी कुकर खाँसी में परिणत हो गई। खाँसते-खाँसते बेचारी गुड्डी बेदम हो जाती, चेहरा लाल पड़ जाता और फिर जब उल्टी हो जाती तब जाकर उसे कहीं शान्ति मिलती।

पड़ोस के वैद्यजी को दिखलाया तो उन्होंने बड़े बेपरवाह होकर दिलासा दिलाई। “कुकर खाँसी तो अपनी अवधि में ही

जाकर ठीक होती है, घबड़ाने की कोई बात नहीं, लो ये पुड़ियाँ ले जाओ शहद में मिलाकर दिन में तीन बार चटा देना ।”

वैद्यजी की दवाई से फायदा होता न दीख पड़ा तो बड़े बाज़ार के खत्री डाक्टर को दिखाया । उन्होंने भी जल्द ठीक हो जाने का विश्वास दिलाते हुए एक शीशी में मिक्सचर दिया और एक रुपया सवा ग्यारह आने वसूल किए । डाक्टर साहब की दवा ने अपना कोई चमत्कार न दिखलाया । खांसी बढ़ती ही गई और यहाँ तक बढ़ी कि अब यह दशा हो गई ।

डाक्टर गौड़ अथवा व्यास को दिखाने की हैसियत न थी, वैद्य और साधारण डाक्टर को दिखा ही चुके थे । गुड्डी की हालत बिगड़ती ही जा रही थी । कुछ समय में न आ रहा था कि क्या किया जाय । शहर में बड़ा अस्पताल है इंग्लैंड और अमेरिका से पढ़कर आये बड़े-बड़े डाक्टर हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि ऐमरजैन्सी तथा जर्नल वार्ड में इलाज मुफ्त होता है, यहाँ तक कि मरीज़ को खाना तक अस्पताल से ही मिलता है । अच्छी से अच्छी दवा और अच्छे से अच्छे प्रबन्ध, वह भी बिना पैसे के । यह सब सोचकर राकेश ने कुलदीप की सुभाई हुई बात को ही मानना ठीक समझा । चौराहे पर से राकेश दो रिक्शे ले आया एक रिक्शे में राकेश की माँ गुड्डी को गोद में लेकर बैठ गईं और दूसरे में राकेश तथा पड़ोसी नन्ने । कुलदीप तथा राज साइकिलों पर रिक्शे के पीछे हो लिए । पड़ोस की बात थी, सब सहानुभूति दिखा रहे थे ।

ऐमरजैन्सी पहुँचते-पहुँचते गुड्डि की हालत और भी खराब हो गई। साँस आधी चलने लगी, घर से चलते समय जो आँखें आधी फटीं थीं सो आधी फटी की फटीं रह गईं।

एक तो गर्मियों के दिन और फिर दुपहर। ऐमरजैन्सी खाली पड़ी थी। गुड्डि को पलंग पर लिटाकर राकेश ऐमरजैन्सी इन्चार्ज को देखने बाहर निकल आया। इधर-उधर देखा कोई नज़र न आया। बराबर के कमरे के दरवाज़े पर खस की टट्टी लगी हुई थी। पानी से भीगी खस की टट्टी से एक खास प्रकार की महक आ रही थी। कमरे के अन्दर से तीन चार पुरुषों और दो तीन नारी कंठों की हँसने की आवाज़ सुनाई पड़ी। राकेश ने खस की टट्टी को हटाकर अन्दर भाँका। मेज़ के चारों ओर चार पुरुष सफेद पैन्ट और सफेद कमीज़ पहिने बैठे थे। उन्हीं के बीच में दो नारियाँ सफेद साये पहिने बैठीं थीं। ठीक सामने मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये बिना बालों के सिर का भारी भरकम शरीर वाला व्यक्ति बैठा था। सबके सामने एक-एक गिलास रक्खा था। राकेश को समझते देर न लगी कि यह ऐमरजैन्सी का स्टाफ है। राकेश ने दरवाज़े पर ही से कहा—“डाक्टर साहब ! बच्ची की हालत बहुत सीरियस है, जल्दी चलिये।”

सब के सब एक दम चौंक पड़े। हँसी एक दम रुक गई मानों साँप सूँघ गया हो। बीच में बैठे बिना बालों के सिर वाले डाक्टर साहब ने अपने चश्मे के मोटे फ्रेम को कानों पर और जमाते हुए राकेश की ओर चश्मे के शीशों में से आँखें फाड़ते हुए देखा। राकेश ने फिर अपना वाक्य दोहराया—

“डाक्टर साहब जल्दी चलिये ! बच्ची की हालत बहुत सीरियस है ।”

इस बार डाक्टर साहब ने बड़ी बेरुखाई से उत्तर दिया—
“चलो अभी आते हैं ।”

राकेश ने खस की टट्टी को फिर वैसा ही लगा दिया ।

अन्दर से डाक्टर साहब की आवाज़ सुनाई दी—“कम्बख्तों के मारे एक मिनट को भी चैन नहीं ।”

“अपना जूस पहिले पी लीजिए, इंडियट ने सारा मज़ा किरकिरा कर दिया” एक नारी कंठ-स्वर सुनाई पड़ा ।

राकेश को स्वप्न में भी इस प्रकार के व्यवहार की आशा न थी । मन में आया कि बह दो-चार खरी-खोटी सुना दे । पर मन मसोस कर रह गया ऐमरजैन्सी रूम में आकर देखा—गुड्डी की हालत और भी खराब हो गयी थी । साँस उखड़ी उखड़ी सी चल रही थीं, दाँत और मुठ्ठियाँ कस कर अभी तक बन्द थीं, बदन नीले से स्याह पड़ चला था, आँखें पथरा सी गईं थीं । गुड्डी के सिर और छाती पर हाथ फेरती हुई माँ खड़ी खड़ी रो रही थी । राकेश के आते ही कुलदीप ने पूछा—“क्यों भाई साहब कोई है नहीं क्या ?”

“हैं क्यों नहीं ! कमरे में बैठे डाक्टर साहब रंगरेलियां कर रहे हैं । अपने को बहुत रोकते हुए भी राकेश के मुँह से निकल ही पड़ा ।

कुलदीप तेजी से ऐमरजैन्सी के बाहर निकल आया और भटके से खस की टट्टी को हटाते हुए बोला—“वैल डाक्टर इज़ाइट दी सर्विस ऑफ ऐमरजैन्सी ? दी कन्डीशन ऑफ बेबी

इज सीरियस, एन्ड नन आँफ्र यू पेईंग ऐनी हीड । आई बिल रिपोर्ट दिस टू, द हाईयर अथारटीज ।”

कुलदीप की यह अंग्रेजी में फटकार सुन कर सबके सब उसकी ओर देखने लगे । लम्बा, सुडौल, गोरा चिट्ठा जचता हुआ व्यक्तित्व, और उस पर सिलकिन कमीज तथा कार्टराईज की पैंट । डाक्टर साहब ने समझ लिया कि कोई मामूली आदमी तो है नहीं, सबके सब हड़बड़ा कर उठ बैठे ।

किसी ने गुड़ी को स्टेथिसकोप से सीना देखना आरम्भ किया और किसी ने नब्ज, तथा किसी ने ब्लड-प्रेसर लेना आरम्भ किया । एक डाक्टर नन्ने से पूछ कर रजिस्टर में खानापूरी करने लगा । आक्सीजन का सिलिन्डर लाया गया, गुड़ी की नाक में आक्सीजन की नली डाल दी गई ।

डाक्टर साहब ने आदेश दिया “मरीज के पास केवल एक व्यक्ति रहे, बाकी बाहर चले जावें ।”

सब बाहर चले आये । अन्दर केवल कुलदीप और राकेश रह गए । राकेश ने धीरे से डाक्टर साहब से पूछा—

“डाक्टर साहब, हाल कैसा है ।”

डाक्टर साहब ने नाक भौं सिकोड़ते हुए उत्तर दिया—
“वैल जन्टिलमेंन, द कन्डीशन इज सीरियस । आप जल्दी से मैं जो इन्जेक्शन लिख रहा हूँ उसका इन्तजाम करके लाइये । जल्द से जल्द लाइये । इट इज वैरी अर्जेन्ट ।”

“क्या अस्पताल से ये इन्जेक्शन नहीं मिल सकते ।”
राकेश ने घबराते हुए धीरे से पूछा ।

“कीमती दवाइयाँ अस्पताल से नहीं मिलतीं ।” डाक्टर

साहब ने छोटा सा उत्तर दे दिया ।

राकेश के मन में आया कि वह पूछे कि फिर गरीबों के लिए मुफ्त इलाज का यह ढोंग कैसा ? फिर इस सरकारी अस्पताल से साधारण जनता को क्या लाभ...? पर उसने चुप रहना ही ठीक समझा ।

हाँलाँकि बाज़ार अस्पताल से अधिक दूर नहीं, फिर भी कैमिस्ट की दुकान पर पहुँचते पहुँचते दस मिनट लग ही गये ।

परचा कैमिस्ट को दिया । उसने एक सरसरी निगाह से पहिले परचा देखा और फिर राकेश को ।

“दस रुपए होंगे” गोली सी मारते हुए कैमिस्ट ने कहा । राकेश के पैरों के तले की ज़मीन निकल गई । जेब के पैसे गिने नौ रुपए और पाँच आने । दस रुपए में ग्यारह आने की कसर थी । राकेश ने गिड़गिड़ाते से हुए कहा—“देखिए मेरे पास नौ रुपए और पाँच आने हैं । ग्यारह आने अभी लाकर देता हूँ ।

विश्वास रखिए । मरीज की हालत बहुत खराब है, बड़ी महरबानी होगी ।”

“अजी ऐसा विश्वास और महरबानी करें तब तो फिर हमारी दूकानदारी चल गयी ।” कैमिस्ट ने हंसते हुए कहा ।

राकेश को जैसे सैकड़ों बिच्छुओं ने काट लिया । उसके माथे पर पसीना आ गया । आँखों के सामने दम तोड़ती हुई गुड़ी का चित्र आ गया । कुलदीप के पास कुछ पैसे जरूर होंगे एक ही साँस में वह दूकान की सीढ़ियों पर से उतर कर साइकिल पर आ गया ।

ऐमरजैन्सी के दरवाजे पर जो आया तो देखा कि कुलदीप घबड़ाया हुआ खड़ा है ।

“ले आए इन्जैक्शन भाई साहब” कुलदीप ने पूछा ।

“ग्यारह आने पैसे कम पड़ गये । कुछ पैसे हैं क्या ?” राकेश ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा !

“देखता हूं ।” कह कर कुलदीप ने जेब से पैसे निकाल कर गिने दस आने । एक आना फिर भी कम रह गया ।

“चलिए नन्ने से लेते हैं । राकेश और कुलदीप दोनों घबड़ाए हुए ऐमरजैन्सी रूम की ओर चले । तभी अन्दर से एक भारी चीत्कार सुनाई दी—

“अ...री...मे...री...गु...ड़ी...री...” राकेश सब समझ गया । ऐमरजैन्सी के सामने ही वह अपना सर पकड़ कर बैठ गया ।



समझौता

सुनील का जी चाह रहा था कि सुई को घुमा कर चार पर ले आवे, पर इससे उसे कोई लाभ न था । उसे अभी साहब के पास से लौट कर आई फायलों को सिलसिलेवार लगाना था कल जो अव्वली वक्त फाइलें साहब के सामने पेश होंगी उन्हें भी सिलसिलेवार लगाना था । और फिर कैश संभालना था और बैलेंस मिलाना था ।

घड़ा ने चार वजाए । धीरे धीरे बाढ़ लोग उठकर घर जाने लगे । पर सुनील ने अपना सर न उठाया । वह अपने काम में लगा था । फायलें सब उठाकर डेस्क में बन्द कर दीं । कैश गिना और बैलेन्स मिलाया । सुनील का चहरा उतर गया । जैसे लू लग गई हो । पूरे सौ रुपये का चक्कर पड़ रहा था । कैश में सौ रुपए कम पड़ रहे थे । दुबारा जोड़ा और कैश गिना । फिर वही सौ रुपए का चक्कर । माथे पर पसीना आ गया । हाथ काँपने लगे, होठ सूख गए, सर में पहिले ही से दर्द हो रहा था अब चक्कर से आने लगे यदि सौ रुपये गाँठ से पुजाने पड़े तो महीना कैसे गुजरेगा । पच्चीस में तो सूखी रोटी भी नहीं हो सकती । उसने अपनी जेबों की पाँच सात बार तलाशी ली, पर कहीं भी कुछ न निकला । थककर चुपचाप कुर्सी की टेक लेकर बैठ गया । सामने कैश बक्स रखा था ।

वह एक टक कैश बक्स की ओर देखने लगा । कैश बक्स के नीचे कागज का टुकड़ा दीख पड़ा । जरा कैश बक्स हटाया तो मानों उसके हाथ सुलेमान का खजाना लग गया, कैश बक्स के नीचे एक सौ का नोट दबा हुआ था । उसके होटों पर एक फीकी मुस्कान दौड़ गई । कैश बक्स में ताला बन्द किया अब गरदन उठाकर जो देखा तो दिन छिप गया था दफ्तर के बूढ़े चौकीदार ने बिजली जला दी । वह दूर खड़ा सुनील को देख रहा था । सुनील उसकी ओर देखकर एक बार फिर फीकी हंसी से हंस दिया ।

‘काहे बाबू हिसाब मिलगइन का ।’ चौकीदार ने बड़े सहानुभूति के स्वर में पूछा । सुनील की शादी पूराब में हुई थी और उसी जिले का यह बूढ़ा चौकीदार था । बूढ़ा चौकीदार सुनील से वही रिश्ता मानता था ।

‘हाँ बाबा, लाज रह गई ।’ सुनील ने एक निश्वास छोड़ते हुए कहा...

‘बाबू तुम्हारे चित्त कछु ठीक नाहि जान पड़त । कौउन खास बात है का ?’

बूढ़े चौकीदार ने उत्सुकता पूर्वक पूछा सुनील चुप रहा । उसने कैश बक्स संभाल कर तिजेरी में बन्द कर दिया । एक पैंती निगाह से कमरे में चारों ओर देखा और फिर कमरे के बाहर ताला लगाकर बाहर आ गया । पूर्णिमा थी । कफन जैसी चाँदनी चारों ओर फैल रही थी । सड़क पर अच्छी खासी चहल पहल थी । पर सुनील को उससे कोई मतलब नहीं । वह जैसे पानी में तेल की बूँद था । पास से एक जोड़ा

निकला । एक महक चारों ओर फैल गई । एक ट्राइस्किल पर कोई चार वर्ष का गोरा, गोल मटोल सा लड़का बैठा चला रहा था और उसके पीछे दम्पति चल रहे थे । उसने दबी हुई निगाह से उन्हें देखा और आंखें नीची करलीं । वह नजर बचाकर निकलना चाहता था । दोनों उसके साथ पढ़ चुके थे । एम० ए० के बाद ही दोनों ने शादी करली थी...दोनों स्थानीय कालेजों में अध्यापक थे । कितना सुखमय जीवन है इनका ।” उसने सोचा । कभी उसने भी स्वप्नों का संसार सजाया था । पर एक हवा के झोंके से सारा ढह गया । पिता जी की इच्छा थी । उसने विवश होकर अपने को समर्पण कर दिया । उसने अपने सारे अरमानों को कुचल दिया । उसकी शादी हो गई । ससुराल वाले एक बड़े जमींदार थे अच्छा खासा दहेज मिला था । लड़की भी बदसूरत नहीं थी...उसे सुन्दर ही कहा जा सकता था । यह भी नहीं था कि वह काला अक्षर भेंस बराबर हो । विद्या विनोदिनी पास किया था । इतना सब कुछ होने पर भी उसमें एक बात और थी । और वह थी उसकी जमींदारानाह । सुनील अपनी पत्नी की कल्पना करके सिहर उठा । नाम था शान्ता पर घर में आते ही घोर अशान्ति मचादी सुनील का घर एक साधारण घर था । शान्ता एक बड़े घर की लड़की थी । सुनील की माँ और शान्ता में वह झगड़े हुए कि एक दिन विवश होकर उसे घर भी छोड़ना पड़ा । उन दिनों वह बी० ए० की परीक्षा दे रहा था । एक मामूली बात को लेकर सुनील की माँ और शान्ता में झगड़ा हुआ । सुनील की माँ

का स्वभाव भी तेज था उनके पति कमाते थे, इसका उन्हें गर्व था, शान्ता के पिता एक बड़े जमींदार थे, इसकी उसे ठसक थी। ताली दोनों हाथों से बजी बातों का भगड़ा हाथा पाई पर उतर आया। सुनील की माँ को उसकी सास ने बहुत सताया था। वह हर सास की तरह अपने ऊपर किए हुए अत्याचारों का बदला अपनी बहू से लेना चाहती थी। पड़ोस में नई बहू ने अपनी सास को मारा था इसका उदाहरण शान्ता के सामने था। परिणाम स्पष्ट था।

सुनील का सारा सामान उठाकर बाहर फेंक दिया उसके सामनेकेवल दो रास्ते थे। या तो वह अपने दो बच्चों व पत्नी को छोड़ दे और फिर या घर को। लाख बुरी सही, पर शान्ता उसकी पत्नी थी, उसके साथ उसे सारा जीवन गुजारना था। सुनील के पिता गुम सुम बैठे रहे। सुनील को घर छोड़ना पड़ा, परीक्षा छोड़नी पड़ी। बी० ए० फेल को सिवाय क्लर्क और कहाँ जगह रखी थी। सोचते सोचते सुनील ने एक लंबी साँस ली, मानों वह अपनी सारी मजबूरियों को अपनी सारी समस्याओं को निगल लेना चाहता था।

सुनील बाजार में से गुजर रहा था। “जिसके होगा खिलैया वह लेगो चड़ैया।” गा गा कर खिलाने वाला चिड़िया बेच रहा था। सुनील ने जेब में हाथ डाला और निकाल लिया। उसके खिलैया तो है पर चिड़ैया कैसे ले ? उसके जी में आया कि वह डाँटकर बेचने वाले को चुप कर दे और कहे कि वह झूठ गाता है।

सुनील अब फुलट्टी बाजार में आ गया था। ऊपर से तबले हरमोनियम और सारंगी की आवाज आ रही थी। एक तेज ठनठनाहठ की आवाज और सुनाई दी। और फिर एक हंसी का कोरस। किसी ने रुपयों से निछावर की थी। फिर पायलों की छमाछम होने लगी। सुनील के सर का दर्द और भी बढ़ गया। उसने अपने कदम तेज कर दिए। बाजार से निकल कर वह फिर सड़क पर आ गया। पीले मकान की ओर उसकी निगाह उठ गई। एक कुम्हलाया हुआ फूल एक कली को चुमकार रहा था। कभी उसके स्वस्नों के संसार का केन्द्र यह फूल भी रहा था। तब की ताजगी और महक अब भी उसके मन में समाई हुई थी। पर अब वह फूल किसी और पर चढ़ चुका था। उसकी ताजगी छीन ली गई थी, उसकी महक फीकी पड़ गई थी। उसकी ओर देखना भी उसके लिए पाप था। वह वहाँ से भाग सा उठा उसे लगा कि उसका कोई गला घोंट रहा है।

घर तक पहुँचते पहुँचते रात के नौ बज चुके थे। सुनील ने धीरे से दरवाजा खटखटाया अन्दर से तेज आवाज आई।

“कौन है ?”

“कोई नहीं मैं हूँ” सुनील ने उत्तर दिया।

“अच्छा तो अब आ गए आप” अन्दर से फिर आवाज आई।

“दरवाजा तो खोलो” सुनील ने फिर कहा।

“जाइए वहीं जाइए जहाँ से आप आ रहे हैं” अन्दर से

उत्तर मिला ।

“बेकार की बात मत करो । दरवाजा खोलना है या नहीं सुनील ने झुंझला कर कहा ।

“दरवाजा नहीं खुलेगा” अन्दर से तेज आवाज़ आई ।

सुनील का सर दर्द के मारे फटा जा रहा था । उसे लगा जैसे उसे बुखार चढ़ रहा है । उसने गुस्से में आकर जन्जीर खटखटाई । जंजीर की आवाज़ से उसका बड़ा लड़का राजीव जग गया था । वह दौड़ कर आया और दरवाजा खोल दिया सुनील अन्दर आया । शान्ता के भीहों में बल पड़े हुए थे । चहरा तमतमा कर लाल पड़ा हुआ था । सुनील ने तरह देना चाहा । यद्यपि उसका शरीर टूट रहा था । सर दर्द के मारे फटा जा रहा था, फिर भी हंसने की चेष्टा करते हुए कहा—

“संतो ज़रा एक गिलास पानी तो देना ।”

सुनील के इस वाक्य ने आग में घी का काम किया । शान्ता ने चीख कर कहा ।

“एक गिलास पानी भी अपने हाथ से नहीं ले सकते, बड़े धन्ना सेठ हैं न । एक बाँदी रख लो । एक नौकर लगा लो । रहते हैं भोंपड़े में और ख्वाब देखते हैं महलों का । ठसक ऐसी है जैसे हजार रुपये कमाते हैं ।”

“जुबान बन्द करोगी या.....”

“या क्या मुझे मारोगे, आप भी अरमान निकाल ले, यह आपका दोष नहीं मेरे भाग्य ही फूटे हैं न जाने बापू ने पैदा होते ही मेरा गला क्यों नहीं घोंट दिया ? वे तो शादी ब्याह करके अलग हो गये, अब जिन्दगी तो मुझे काटनी पड़ रही

है। एक तुम्हीं कुँवर कन्हैया रह गये थे उनकी निगाहों में। घर देखना था तो अपनी बराबर का घर देखते। यहाँ अपने पेट के लाले पड़ते हैं, दूसरों को क्या खिलावेंगे और क्या पहनावेंगे। कभी यह भी नहीं हुआ कि मेरे लिये न सही बच्चों के लिये ही दो पैसे की चीज ले आते। तिस पर भी ठसक ऐसी अवध के नवाब हों।.....”

शान्ता ने सुनील की बात को बीच ही में काटकर चीखते हुये कहा।

सुनील की एक तो यों ही तबीयत खराब थी और परेशान था, ऊपर से यह भगड़ा। वह मारे क्रोध के काँप उठा। उसने कसकर एक तमाचा अपने ही गाल पर मारा। गुस्सा आखिर कहीं तो उतरना था। सुनील भभक उठा।

“बकती ही जावेगी या चुप भी रहेगी।”

“मारते का हाथ पकड़ा जा सकता है, बोलते की जुवान नहीं पकड़ी जा सकती...एक चाटे से क्या हुआ, सर दे मारो दीवाल से तब पता भी चले। मैं तुम्हारे अब इन छिड़पनों में नहीं आ सकती। किसी और को दिखाना अपने स्वांग, जो तुम्हारी असलियत न जानती हो...” शान्ता जोर जोर से रोती जाती और कहती जाती। माँ को जो रोते देखा तो राजीब और सुलोचना दोनों रो उठे सुनील मारे गुस्से के पैर पटकता हुआ बाहर निकल गया।

“अब तुम बस मेरी लहाश ही देखोगी।” जाते जाते सुनील कह गया। सुनील के जाने के बाद शान्ता जी खोलकर रोई। दोनों बच्चों को खाना खिलाकर सुला दिया पर स्वयं

गुमसुम बैठी सोचती रही ।

“सुनील इतना बुरा नहीं है । बेचारा जो कुछ लाता है सब उसी के हाथ पर तो रख देता है । ऊपर की कोई आम-दनी तो है नहीं फिर वह उसके लिये और खर्च कहां से करे । जितना उसके बस में है उतना तो करता ही है । कभी उसने उससे दो शब्द नहीं कहे । कभी उस पर हाथ नहीं उठाया । वही उसे भला बुरा कहती रहती है । उसने कभी लौटकर उसे बुरा नहीं कहा, उसी के पीछे तो उसने घर छोड़ दिया पढ़ाई छोड़ दी, शेर सा बदन हड्डियों का ढांचा हो गया, और वह उससे कभी सीधे मुंह नहीं बोलती । भगवान न करे कुछ हो जावे, यदि कुछ हो गया उन्हें तो फिर वह किसका सहारा लेवेगी । छोटे-छोटे बच्चे दर-दर की भीख मांगेंगे । उसकी स्वयं ही क्या दशा होगी ।”

सोचते-सोचते शान्ता की आंखों में आंसू छलक आये शान्ता ने धोती की कोर से आंसू पौछे । दरवाजा खोलकर बाहर देखा । मुहल्ले के दो आवारा लड़के आपस में भद्दी गालियाँ देते हुये बातें करते जा रहे थे और पड़ोस के मकान की ओर घूर रहे थे । शान्ता ने जोर से दरवाजा बन्द कर दिया ।

शान्ता खाट पर जा बैठी और फिर सोचने लगी ।

“उसने अच्छा नहीं किया । उनसे इस प्रकार का व्यवहार उसे नहीं करना चाहिये था । उनका मुंह कितना उतरा हुआ था, कदाचित्त उनकी तबियत खराब रही होगी । वह भी कितनी कठोर हृदय हैं कि उनसे उसने तबियत के बारे में

कुछ पूछा तक नहीं। कहाँ गये होंगे अब कहीं वास्तव में रूठ तो नहीं गये।”

कमरे में टंगी दीवाल घड़ी ने ११ बजाये। शान्ता की बेचैनी और बढ़ गई। वह उठकर बैठ गई और फिर दरवाजे तक गई और लौट आई।

“किसको भेजूं उन्हें देखने के लिये”। वह सोचने लगी।
“राजीव अभी बच्चा है। पड़ोस में सब सो गये होंगे।”

घड़ी ने बारह बजाये और फिर एक। शान्ता एक अज्ञात आशंका से काँप उठी। उसे अपने पर रोना आ गया।

“वही तो दोषी है सबके लिये :”

वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी।

“हे भगवान ! उनकी जगह मुझे कुछ भी हो जावे, वे कुशलता पूर्वक लौट आवें, नहीं तो वह कहीं की भी न रहेगी।”

दरवाजे पर एक ताँगा रुकने की आवाज आई। उसने दौड़कर किवाड़ खोली। चार आदमी मिलकर किसी को उतार रहे थे। शान्ता काँप उठी।

“अरे ये तो वही हैं।” शान्ता के मुँह से सहसा निकल गया। वह दौड़कर उनके पास पहुँच गई। उसे अपने तन बदन की सुध न थी। सुनील के सर और हाथ में पट्टी बंधी हुई थी। आँखें बन्द थीं।

“हाय क्या हो गया इन्हें ? हाय क्या हो गया ?” की रट लगा दी शान्ता ने।

“हो क्या गया, शराब पीकर लड़ बैठे और सर फुड़वा

लिया, पत्ता नहीं यह आदत कब से आ गई सुनील बाबू में हमने तो पहले कभी इन्हें पीते न देखा, और न सुना ही ।

चारों में से एक ने कहा । सुनील को खाट पर लेटा कर वे चारों चले गए । शान्ता ने किबाड़े बन्द करदी और सुनील के सिरहाने बैठ कर पंखा करने लगी । सुनील रह रह कर कराह उठता...

“मुझे और पिलाओ...और...खूब और...मेरा कोई नहीं...मेरा कोई नहीं । सन्तो...हाँ सन्तो...मैं उसका मुँह नहीं देखूंगा...मैं मिट गया...बरबाद हो गया । पर उसे दया नहीं आई । मेरा कोई नहीं...कोई नहीं...फिर वह कराह उठा ।”

सुनील के मुँह से बड़ी बुरी दबल आ रही थी । सारा कमरा उसी बदबू से भर गया । लगभग चार के करीब सुनील को एक उलटी हुई, शान्ता और भी घबड़ा उठी, वह दौड़-दौड़ कर कभी पैर के तलुवे सहलाती, और कभी पंखा झलती । पाँच के करीब सुनील ने आँखें खोलीं और बन्द करलीं शान्ता सुनील के पैर पकड़े बैठी रो रही थी । गरम गरम आंसू पैर पर गिरे, सुनील ने अपने पैर सिकोड़ लिए, शान्ता ने सुनील के दोनों पैरों को अपने मुँह से लगा लिया । वह अपने होठों से पैर के पंज को दबाती जाती और रोती जाती...

“यहाँ आओ सन्तो, सुनील ने धीरे से कहा ।”

“मुझे तो यही स्थान चाहिए मेरे देवता ! मुझे क्षमा करदो । अब भविष्य में कभी ऐसा अवसर नहीं आवेगा ।” शान्ता फफक कर रो उठी ।

सुनील उठकर बैठ गया, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या यह वही शान्ता है ? उसने शान्ता को हाथ पकड़ कर उठाया पर वह उठी नहीं केवल सरक कर खाट की बगल में आ गई ।

“मेरी ओर देखो । “सुनील ने कहा । और शान्ता की ठोड़ी पकड़ कर ऊपर उठादी । उसकी बड़ी बड़ी बन्द आंखों से मोती बन बन कर बिखर रहे थे ।

प्राची के अरुण अधरों पर मुसकान आ चली थी ।

“देखो शान्ता हंस दो, तुम्हें मेरी सौगन्ध है ।” सुनील ने कहा ।

शान्ता के अधर प्राची के अरुण अधरों से प्रतिविम्बित हो उठे ।

“मुझे क्षमा करना सन्तो । मार्ग में हरदेव मिल गया था । कसम दिलाकर जबरदस्ती पिलादी, मैं भो गुस्से में था” सुनील ने बड़े दर्द भरे स्वर में कहा ।

“खैर हुआ सो हुआ, पर अब……”

“अब कभी नहीं ।” सुनील ने बात पूरी करदी । शान्ता लजा सी गई । एक टिमटिमाता तारा भी छिप गया । पूर्व में सिन्दूरी सूरज का ऊपरी भाग दिखाई देने लगा ।

“एक बात कहूं” शान्ता ने पूछा

“एक नहीं दो” सुनील ने जवाब दिया ।

“आप मेरी जुबान काट दीजिए शान्ता ने कहा ।”

“क्यों ?” सुनील ने आश्चर्य से पूछा ।

“भविष्य में मेरे मुह से कहीं कुछ निकल न जाय ।”

शान्ता ने बड़े सहज भाव से कहा ।

“चल पगली ।” सुनील ने शान्त के गाल पर हलकी सी चपत जमाते हुए कहा ।

भ्रांगन के ऊपर वाले छज्जे पर एक कपोत और एक कपोती आकर एक दूसरे के पास सिमिट कर बैठ गए थे ।

मेरी मां तो

मिसेज दुबे की यह आदत है कि काम करेंगी थोड़ा और चिल्लाएंगी अधिक। किसी से जरा भी कोई गलती हुई कि उन्होंने आसमान सर पर उठाया। जरा सी बात का वे तुरंत तूल बना देतीं। उनकी इस आदत के कारण उनके पास कभी कोई नौकर पूरे साल भर नहीं टिक पाता था। मिसेज दुबे को नौकरों के बारे में सदैव यह शिकायत रहती कि वे कभी काम नहीं करना चाहते। वे अक्सर कहा करतीं—

“नौकरों की जाति बड़ी कामचोर होती है, वे केवल खाना जानते हैं काम करने में उनकी नानी मर जाती है।”

इधर पिछले दो महीने से मिसेज दुबे बहुत ज्यादा परेशान थीं। कैप्टिन दुबे का तबादला हो गया था अतः खानसामा और चपरासी उनके साथ चला गया। सेशन का बीच था। मिसेज दुबे गर्ल्स स्कूल में एक साल का बॉन्ड भर चुकीं थीं। पूरे साल मजबूरन रहना था। विनोद की पढ़ाई का भी सवाल था। स्कूल छोड़ने का मतलब १५ विनोद की एक साल की बरवादी। यही सब सोचकर मिसेज दुबे रुक गईं थीं।

कैप्टिन साहब के तबादले के साथ ही उनके खानसामा और चपरासी का भी तबादला हो गया था। अब मिसेज दुबे

के सामने एक बड़ी समस्या थी.....रोटी कौन पकाये और भाड़ू कौन दे ? इस समस्या का भी एक हल निकल आया । पिछले सप्ताह रामू की माँ उसे निस्सहाय और अकेला छोड़कर चल बसी थी । मिसेज दुबे ने उसे अपने पास रख लिया था ।

रामू की माँ ठकुराइन के नाम से प्रसिद्ध थीं । ठकुराइन कहां की रहने वाली थीं इसका ठीक पता किसी को न था । रामू के पिता कौन थे इसे कोई नहीं जानता था । हजार मुँह हजार बातें थीं ।

आज से आठ वर्ष पूर्व वह रामू को छः वर्ष का लेकर इस शहर में आई थी । न जाने कैसे वे डाक्टर चौहान की कोठी के पीछे की एक कोठरी में आकर रहने लगीं थीं । उस समय ठकुराइन की उम्र लगभग पच्चीस या छब्बीस की रही होगी ।

इस आठ वर्ष के जीवन में कभी ऐसा भवसर न आया कि कोई ठकुराइन की ओर उंगली भी उठा सका हो । कभी किसी ने ठकुराइन को किसी से बात करते न देखा । ठकुराइन थीं कि उन्हें अपने काम से काम था । रोज सुबह चार बजे उठ जातीं । नहाकर दो घण्टे पूजा करतीं और फिर खाना पकातीं आठ बजते-बजते खाना खाने बैठ जातीं । खाना खाते समय रामू उनके साथ होता । वे पहले दो निबाले पृथ्वी पर चढ़ा देतीं और तीसरा निबाला अपने हाथ से रामू के मुँह में देतीं । उस समय ठकुराइन की आँखें छलछला आतीं और दो बूँद आँसू टपक पड़ते । पड़ोस की बुढ़िया सासू

रिक्शा वाले की माँ ने इस रहस्य को जानने की कोशिश भी की तो ठकुराइन ने बड़ा रूखा उत्तर दिया—“तुम्हें अपने काम से काम होना चाहिये दादी।”

इसके बाद किसी ने कुछ पूछने की हिम्मत न की।

बात तो दरअसल यह थी की ठकुराइन का देखने का ढंग ही कुछ ऐसा था कि कभी किसी की उनसे कुछ पूछने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

दिनभर ठकुराइन पास की चक्की पर अनाज साफ किया करती। रामू उनके साथ छाया की तरह रहता।

पिछले सोमवार को सुबह चार बजे रामू का चिल्लाना सुन सब पास पड़ोसी आ गए। देखा ठकुराइन के प्राण पखेरू उड़ चुके थे। आँखें आसमान की ओर फटी हुई थी। एक तो ठकुराइन की आँखें यों ही बड़ी बड़ी थीं और फिर इस समय और भी बड़ी लग रही थी, पर अब वे सुन्दर न होकर भयंकर लग रही थीं। बदन ऐंठा हुआ था। हाथ की मुट्ठियाँ इतनी जोर से बन्द थीं कि उनका खोलना सम्भव न था।

चौदह वर्ष का रामू कोई बच्चा तो था नहीं। वह सब समझता था। वह भली भाँति जानता था कि उसका एक मात्र सहारा भी न रहा। वह दहाड़ मारा मार कर ठकुराइन का चहरा देखता और रोता। वहाँ इकट्ठे हुए लोगों में कोई ऐसा न था, जिसकी आँखों में आँसू न भर आए हों।

मिसेज दुबे ने रामू को अपनी ओर खींच लिया और उसे सन्तावना देने की कोशिश करने लगीं। रामू को थोड़ा सहारा

मिला तो वह और जोरों से रोने लगा ।

किसी की समझ में न आ रहा था कि आखिर ठकुराइन मरी किस प्रकार । जितने मुंह उतनी ही बातें हो रहीं थी । डाक्टर चौहान भी घबड़ाये हुए थे । उन्होंने जल्द ही शव की अन्तिम क्रिया करने का प्रयत्न किया । रामू को मिसेज दुबे अपने साथ ले गईं ।

रामू का बिलखना देख मिसेज दुबे के भी आंसू निकल आए । वे रामू को तस्सल्ली देती हुई बोलीं ।

“छिः तुम समझदार होकर रोते हो । जो यहाँ आया है वह तो जायेगा ही । तुम्हारा और तुम्हारी माँ का इसी दिन तक का संयोग बदा था । तुम्हें रोते देखकर तुम्हारी माँ की आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी । तुम एक अच्छे बेटे हो । तुम्हें चाहिए कि तुम उनकी आत्मा को शान्ति दो । मेरे लिए तुम वैसे ही हो जैसे विनोद । ठकुराइन की जगह आज से तुम मुझे समझो ।”

रामू और जोर से रोने लगा । मिसेज दुबे अपनी साड़ी के पल्ले से उसके आंसू पोंछने लगीं । पर रामू के आंसू पोंछते पोंछते उनके आंसू निकल आये ।

रामू मिसेज दुबे के साथ रहने लगा । वह अपनी माँ की तरह चार बजे सुबह उठ बैठता । जब तक मिसेज दुबे उठतीं वह सारी कोठी की झाड़ू लगा कर बरामदे की सीढ़ियों पर बैठ जाता और दीवाल की टेक ले आसमान की ओर निहारा करता ।

रामू सदैव खोया खोया सा रहता । मिसेज दुबे का व्यव-

हार भी बदलता जा रहा था । रामू और भी गंभीर रहने लगा । वह दिन में एक बार अकेले में जी खोल कर रो लेता और फिर सारे दिन चुप बना रहता ।

रात से ही मिसेज दुबे का मूड खराब था । सुबह इन्स्पेक्टर्स ऑफ स्कूल्स आने वाले थे कैप्टिन दुबे का पत्र आया था उनका स्वास्थ्य ठीक न था । स्कूल से छुट्टी मांगी तो साफ मना कर दिया गया ।

मिसेज दुबे ने रामू को तीन चार बार आवाज दी पर वह सीढ़ियों पर बैठा आकाश की ओर एकटक देखता ही रहा । आखिर मिसेज दुबे भुंभलाती हुई स्वयं आई और रामू को झकझोरती हुई बोलीं ।

“सुन नहीं रहा है ? कबसे तुझे पुकार रही हूं । कानों में ठेंठें हैं क्या ? बड़ा लाट साहब का बच्चा है । कौन तेरे खाने के लिए इतना इन्तजार करेगा ?”

रामू चुपचाप उठकर खड़ा हो गया । उसकी आंखों में आंसू भर आए । उबउबाई आंखों से मिसेज दुबे की ओर देखते हुए बड़बड़या—

“मेरी माँ तो……?” और फिर फूट फूट कर रो उठा । मिसेज दुबे जोर जोर से पैर पटकती रसोई घर की ओर चली गई ।



प्लेट फार्म पर

“बड़ी गर्मी है ?”

“जी हाँ” मैंने हामी भरते हुए कहा और फिर अखबार पढ़ने लगा ।

“कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं ?” ऊपर से नीचे तक सफेदपोश महाशय ने प्रश्न किया ।

“कानपुर से ।” मैंने फिर छोटा सा उत्तर दिया

“बिजनेस करते होंगे आप” फिर प्रश्न हुआ ।

“जी नहीं”

“तो क्या किसी सरबिस में हैं ।”

“जी नहीं”

“तो फिर”

“मैं पढ़ता हूँ ।”

“अभी तक आप पढ़ते हैं ?” बड़े आश्चर्य से पूछा उन महाशय ने ।

“क्या कोई गुनाह कर रहा हूँ”

“नहीं नहीं, यह बात नहीं” महाशय भेंप से गये पर हारे नहीं । दुबारा फिर प्रश्न किया

“क्या विचार है आगे”

“विचार क्या है । आधी जिन्दगी तो पढ़ते पढ़ते कट

जावेगी और रहो आधी, सो वह भी कट ही जावेगी ।”
मैंने बात को खत्म करने की गरज से कहा । पर वे तो जैसे
बहस करने को कमर कसे बैठे थे, बोले—

“हाँ साहब ! आगे का विचार आज के जमाने में क्या
किया जाय । चारों ओर बेकारी है, बे रोजगारी है । आज
हमारा देश आजाद है, बड़ी २ योजनायें चल रही हैं फिर भी
हमारे नौजवान के सामने के रास्ते बंद हैं, और जो खुले भी
हैं उन पर सिफारिशों की रोक लगी है ।”

महाशय जी ने एक ठंडी साँस ली, जैसे वे आज की
नौजवानों की समस्याओं से हार्दिक दुखी हैं ।

मेरे हृदय की भुंभुलाहट श्रद्धा में बदलने लगी । मैं सोचने
लगा—ये महाशय कितने चिन्तित हैं आज की नौजवानों की
समस्या से । मेरे हृदय में उनके बारे में और अधिक जानने
की इच्छा स्वभावतः हो उठी । मैंने बड़े आदर के साथ पूछा—

“क्षमा कीजियेगा—क्या मैं आप से पूछ सकता हूँ कि
आप क्या करते हैं ?”

“अरे वाह । यह भी कोई बात है ? मैं बिजनेस करता
हूँ ।”

“किस प्रकार की बिजनेस” मैंने जरा सकुचते हुए पूछा

“यही अपना एक तेल मिल है, और सर्राफा है, और
गल्ले की आढ़त ।” मेरा हृदय श्रद्धा से और भी भर गया । मैं
फिर सोचने लगा । लोग नाहक कहते हैं कि पैसे वाले आधु-
निक समस्याओं से दूर रहते हैं । वे हृदय हीन हैं । ये भी तो
एक पैसे वाले । मैं एकटक निगाहों से बड़ी श्रद्धा के साथ

उन्हें देखने लगा ।

खिड़की के बाहर पेड़ दौड़ लगा रहे थे । हिरनों का एक झुण्ड पीछे मुड़-मुड़कर देखना हुआ भागा जा रहा था । पटरी के पास की झाड़ी में से एक खरगोश का जोड़ा निकल भागा ।

अब महाशय अपने पास बैठे सज्जन से बातें कर रहे थे ।

“... अजी क्या पूछते हो आजकल इन छोकरो की, आसमान सर पर उठा रखा है, हम भी पढ़े थे, हमने भी कॉलेज का रंग देखा था, पर हमारे सामने ऐसा हाल कभी न था । हम लोग कितनी इज्जत करते थे अपने प्रोफेसरों की, उनसे खुलकर बात करने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी । अब देखो क्या पल्टा खाया है जमाने ने । प्रोफेसरों की बात मानना तो दूर रही, अब तो उन्हें अपनी इज्जत बचाने की पड़ती है, अब वैसे प्रोफेसर भी कहाँ । पहले के प्रोफेसर लड़कों के लिये आधी रात तैयार रहते थे, और तब लड़के भी उनके लिये अपनी जान देने को तैयार रहते थे ।”

और मैं सोचने लगा “कितना यथार्थ सत्य है इनकी बात में । आज सरकार न जाने क्यों ऐसे लोगों से सलाह नहीं लेती ।”

महाशय जी कहते जा रहे थे ।—

“इन पंचवर्षीय योजनाओं और समाजवाद के नारे से कुछ नहीं होने का । समाजवाद से केवल बहिरंतर परिवर्तन होता है । बहिरंतर परिवर्तन तो वास्तविक परिवर्तन नहीं । जब तक आन्तरिक परिवर्तन नहीं होता तब तक सारे परिवर्तन

बेकार हैं। जब तक भावनायें नहीं बदलेंगी तब तक सारी योजनायें व्यर्थ हैं। पर आज मूलतत्त्व भावनाओं के बदलने को और कोई ध्यान नहीं देता। लोग धर्म का विरोध कर रहे हैं, पर उन्हें पता नहीं आज जो थोड़ा बहुत अनुशासन है, वह धर्म के अंकुश के ही कारण, अन्यथा समाज में उच्छृंखलता का तान्द्व नृत्य हो जावेगा। मेरा तो अपना विचार है कि शिक्षा संस्थाओं में धर्म का पठन पाठन अनिवार्य बना दिया जाय, तभी आज की अनुशासन हीनता, उच्छृंखलता, संकीर्ण और संकुचित भावनायें दूर होवेंगी।”

मेरा मस्तिष्क श्रद्धा से झुकने लगा। मैं सोचने लगा—
“वाह ! कितने महान विचार हैं। वास्तव में आज की परिस्थितियों में, धर्म का और भी विशेष रूप से महत्व है। इन महाशय को केन्द्र के मंत्री मंडल में अवश्य होना चाहिये था। इनके क्रियात्मक सहयोग की बड़ी आवश्यकता है।” मेरा जी चाहने लगा कि मैं इनके पैर छू लूँ। इनके चरणों की रज को अपने माथे में लगा लूँ।

खटाखट पटरियाँ बदलने लगीं, सर से सिगनल निकल गया। बातें बन्द हो गईं।

“कौन सा स्टेशन है अब ?” महाशय जी ने पूछा।

“शिकोहाबाद” मैंने बड़े विनम्र होकर उत्तर दिया।

“गाड़ी तो रुकेगी” उन्होंने दुबारा प्रश्न किया।

“जी हाँ ! शिकोहाबाद जंक्शन है, यहाँ हर एक गाड़ी रुकती है।” मैंने पुनः बड़ी नम्रता से उत्तर दिया।

धीरे-धीरे गाड़ी की रफ्तार कम होने लगी, बाईं तरफ

लाल लाल बजरी चमकने लगी, प्लेट फार्म आ गया था, एक भटके के साथ गाड़ी रुक गई। अन्दर और बाहर एक चहल-पहल सी उठ खड़ी हुई।

“लैमन सोडा, सोडा लैमन” पानी बरफ, “आज का टाईम्स, माया, धर्मयुग, मनोहर कहानियाँ”, “दाल चने की मसालेदार” “कुली, ओ कुली” की मिली-जुली आवाजें एक साथ आना शुरू हो गईं।

मेरी स्मृतियाँ जाग उठीं। शिकोहाबाद का स्टेशन अब भी वैसा ही था, वही सामने फर्स्ट और सीक्रेन्ड का मिलाजुला वेटिंग रूम, वही पुराना स्टेशन मास्टर का आफिस, और वही पुराना लैटर बक्स, दुनियाँ कितनी बदल गई पर शिकोहाबाद का स्टेशन जैसा का तैसा ही था। स्टेशन के उस ओर लगे सीखचों के बाहर इक्के वाले खड़े वही पुरानी आवाजें लगा रहे थे, “एक सवारी बड़े बाजार को” “एक सवारी शहर को।”

इस प्लेट फार्म पर कितने ऊधम किये हैं। टूँडला स्टेशन पर एक टी० टी० आई से भड़प हो गई थी। हम सब उनकी घात में लगे थे। कानपुर पैसेन्जर रैंग उठी थी, टी० टी० आई० महोदय भागकर एक डिब्बे में चढ़ने लगे, कि एक लड़के ने उनकी कमर पकड़ कर खींच ली, और एक ने मुँह पर कसकर हाथ मारा गाड़ी चली गई और वे हम लोगों के पैरों पर पड़ने लगे।

शिकोहाबाद की हॉस्टिल की जिन्दगी भी एक जिन्दगी थी। रात के ग्यारह बजे चाँदनी रात में कबड्डी जमती थी,

जो नहीं खेले उसकी आफत । सुबह शाम अखाड़ा और नहर का नहाना । क्या मस्ती के दिन थे ।

“लीजिये दाल खाईये” महाशय जी ने कहा मैं एकदम चौक पड़ा, पुरानी स्मृतियाँ एक दम धुल गईं ।

“जी” मैंने गर्दन अन्दर करते हुये कहा और उनके सामने बड़ी श्रद्धा से हाथ पसार दिया जैसे मैं प्रसाद ले रहा हूँ ।

“अबे एक आने की और दे” प्लेट फार्म पर खड़े दाल बेचने वाले लड़के से महाशय जी ने कहा । उनके बोलने में वह कोमलता न थी । मेरी श्रद्धा को ठेस सी पहुँची लड़के ने दाल बनाकर महाशय जी के हाथ पर रख दी महाशय जी को जैसे करंट लग गया । वे चौंक- कर बोले—

“अबे यह एक आने का दाल है, थोड़ी सी और रख ।”

लड़के ने न जाने किस निगाह से महाशय जी को ओर देखा और पलकों को नीचे झुका लिया, मानो किसी व्यथा को छिपाने का प्रयत्न कर रहा है और फिर थोड़ी सी दाल और डाल दी । मुझे महाशय जी के व्यवहार पर आश्चर्य हो रहा था । मेरी श्रद्धा धीरे-धीरे खिसक रही थी ।

“अबे नीबू नहीं डाला, साले लूटते हैं लूटते” महाशयजी ने दाल वापस करते हुये कहा । गार्ड ने सीटी दी ।

लड़के ने रस हीन नीबू में से रस निकालने की चेष्टा की, चार बूँदें गिर पड़ीं । गाड़ी रेंग उठी । उसने लपक कर दाल महाशय जी के हाथों में देदी ।

“बाबू जी पैसे ?”

“अबे देते हैं—साले पर दाल बनाना भी नहीं आता ला

रुपए की रेजगारी तो निकाल”

लड़का डिब्बे के साथ भागने लगा । जैब से कुछ इकत्री और दुअत्री निकालीं और गिनने के बाद महाशय जी के हाथों में देदी ।

अब महाशय जी गिनने लगे । गाड़ी की रफतार बढ़ गई ।

“बाबू जी रुपया तो दो ।” लड़के ने भागते हुए कहा ।

“अबे यह चवन्नी खराब है, साला जल्दी में भेड़ना चाहता है ।”

“चवन्नी तो ठीक थी, पर जैसी आपकी मर्जी” दो दुअत्री देते हुए लड़के ने कहा ।

मेरी सारी श्रद्धा महाशय जी के व्यवहार से टूट कर चूर चूर हो चुकी थी । श्रद्धा के स्थान पर धीरे धीरे नफरत जगह ले रही थी । मुझ से न रहा गया ।

“अब तो रुपया दे दीजिये न उसे ।” आखिर मैंने कह ही दिया ।

महाशय जी सुनी अनसुनी करके दुबारा रेजगारी गिनते रहे । प्लेटफार्म खत्म होने वाला था ।

“बाबू जी……” लड़के ने लपक कर डंडा पकड़ना चाहा पर डंडा हाथ से छूट गया

“अरे…रे…रे……” सहसा दो तीन आवाजें कम्पार्टमेंट में गूँज उठीं ।

“साले मरने चले आते हैं……”

महाशय जी कह रहे थे ।

मेरे पास बैठे सज्जन ने जंजीर खींच दी, गाड़ी की चाल धीमी हो गई, फिर एक भटके साथ रुक गई । मैं कूद कर बाहर भागा । कोई पचास हाथ पीछे, जहाँ पर प्लेटफार्म खत्म होता है, इंजन में पानी डालने वाले नल के पास, कुछ भीड़ जमा हो गई थी ।

“राम ! राम ! देखा नहीं जाता । बड़ा । बुरा कटा है ।” एक ने भीड़ में से निकलते हुए कहा ।

लड़के की दोनों टाँगें कट गई थी, एक टखने के ऊपर से और एक टखने के नीचे से, खून का जैसे तालाब सा बन गया हो, टाँगें दोनों पटरियों के बीच पड़ी थरथरा रही थीं, जैसे छिपकली की दुम कटने पर थरथराती है, खून का फव्वारा सा छूट रहा था ।

“साँस चल रही है क्या ?” किसी ने पूछा

“अब कहाँ रखी साँस ।” पास खड़े एक दूसरे व्यक्ति ने कहा ।

“बेचारा पढ़ता था और पूरे घर को संभालता था ।” एक कुली ने ठंडी साँस छोड़ते हुए कहा ।

“भाग्य तो देखो, अभी थोड़ी देर पहिले मुझसे कह रहा था, अगले महीने बहिन की शादी है बड़ा काम करना पड़ेगा तुम्हें” अखबार बेचने वाले ने आँखों में आँसू भर कहा । मुझ में और अधिक देखने की सामर्थ्य न थी । लौटकर कम्पार्टमेंट में चला आया ।

“क्या हुआ ?” महाशय जी ने पूछा मैं चुप रहा । एक टक महाशय जी की ओर देख रहा था । मुझे लगा कि महाशय

जी धीरे धीरे रूप बदल रहे हैं । उनके सफेद वस्त्र हट गये उसके नीचे से काला भयंकर तेल से डूबा शरीर निकल आया । उसकी आँखों पर सोने की ईंटें रखी थीं, और रोयें पर गेहूँ के दाने थे, सर पर, चने और मटरों का ढेर था । वह भयंकर जीव अट्टहास कर उठा । उसके मुँह में दाल बेचने वाले लड़के की तरह के अगणित नौजवान पड़े तड़फ रहे थे । कुछ हड्डियों के ढाँचे और कुछ केवल कंकाल ही थे । मैंने आँखें बन्द कर ली । चुपचाप अपनी अटैची उठाई और उतर कर प्लेटफार्म की ओर चल दिया । महाशय जी के साथ सफर करना मेरे बस के बाहर था ।



दो आवाजें

धीरे धीरे आसमान लाल हो उठा । दो चार टिमटिमाते तारे भी लाली में छिप गये । चाँदनी चौक के बीच से निकलती नहर के दोनों किनारों पर लगे अशोक के पेड़ों पर से रात भर की सोई हुई चिड़ियाँ एक साथ चहचहा उठीं । नहर की पटरी पर आने जाने वालों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी । पौ फटते फटते एक अच्छा खासा मेला सा लग गया । सहसा “खबरदार ! होशियार, अदब कायदा निगहदार, साहब आलम, मिर्जा, कमर सुल्तान बहादुर तशरीफ ला रहे हैं ।” की आवाज नहर की बाईं पटरी पर गूँजने लगी ।

मिर्जा कमर अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह की लाड़ली बेटी, करीशा बेगम का आखों का तारा था । सम्राट उसे प्यार में जिगर का टुकड़ा कहते थे । वे उसे अपने शहजादों से भी अधिक चाहते ।

मिर्जा कमर महलों में पैदा हुए, आंखें खोलीं तो सामने एक संसार को हाथ बांधे सर भुकाये खड़ा देखा । होश संभाला तो बड़े बड़े उदन्ड सरदार आखों के इशारों पर दौडते थे । मिर्जा के एक इशारे पर किसी की भी काया-पलट हो सकती थी । यद्यपि मुगल साम्राज्य के पैर लड़खड़ा रहे थे, पर उसके शहजादों की शानशौकत में कोई कमी न आई थी ।

अमीरों का वही रौब था, शहजादों का वही दबदबा था, और कहीं नहीं तो कम से कम दिल्ली में तो था ही ।

“खबरदार ? होशियार……” की आवाज फिर गूँज उठी, नहर की सड़क पर भगदड़ मच गई । बात की बात में सड़क खाली हो गई ।

आगे आगे पाँच-सात सिपाही और उनके पीछे मिर्जा कमर, अपने प्यारे सफेद घोड़े पर और उनके पीछे फिर पाँच सात- सिपाही, लाल किले से फतेहपुरी ओर जा रहे थे । मिर्जा की निगाहें जिधर घूम जातीं, उधर ही सहमे खड़े लोग मिर्जा को ताजीम बजाने लगते । सब मिर्जा के स्वाभाव से परिचित थे ।

सहसा, न जाने किधर से एक बूढ़ा जिसके सारे बालों ने जीवन के कटु अनुभव देखकर अपना भी रंग बदल लिया था, चेहरे पर पड़ी भुर्रियाँ साफ बतला रही थीं कि न जाने उसने कितनों का उत्थान और पतन देखा है, मिर्जा कमर के सामने आ गया और “या अल्लाह थोड़ा सा आटा दिला दे, कहकर अपना हाथ पसार दिया ।”

मिर्जा के तेवर चढ़ गये । उनके सामने आज तक किसी ने इस प्रकार की गुस्ताखी न की थी । वे इसे भला कैसे सह सकते थे ।

“महफूज” मिर्जा कमर ने कड़क कर कहा ।

तभी आसमान में एक कोड़ा ऊपर उठा और फिर ताड़ से एक आवाज हुई । बुढ़ा मुँह के बल गिर पड़ा । दो सिपाहियों ने उसे उठाकर एक ओर फेंक दिया और ‘खबरदार !

होशियार की आवाज़.....फिर गूँजने लगी । बुढ़े ने उठने की कोशिश की मगर फिर मुँह के बल गिर पड़ा । पीठ से खून बहकर जमीन को लाल रंग से रंगने लगा । एक बार फिर बूढ़े ने अपना सिर ऊपर उठाया । दूर से आती हुई खबरदार होशियार की धीमी आवाज फिर उसके कानों में आई । बूढ़ा मुस्करा उठा, उसके होठ हिल उठे “अल्लाह-र-हम-क-र”, और फिर वह मुँह के बल गिर पड़ा ।

दो

सन् १८५७ ।

तोपें गरज रही थीं । गोले बरस रहे थे, भूमि पर चारों ओर लाहशें ही लाहशें दृष्टिगोचर होती थीं । रास रंग और वैभव की रानी दिल्ली, मुगलिया सल्तनत की राजधानी दिल्ली शमशान में बदल गई थी । चारों ओर निर्जनता का साम्राज्य था । लाल किले के दरबारे खास में अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह अपना अन्तिम फैसला करने बैठे हुए थे । सर्व सम्मति से यह तय हो चुका था कि शहंशाह बहादुर शाह मय वेगमों के हुमायूँ के मकबरे में जा छिपें और शहजादे पहाड़ गंज की ओर चले जायें, और तब तक सब लोग छिपे रहें जब तक बाहर से मदद न आ जाय । मदद मिलते ही दिल्ली पर तीन तरफ से हमला बोल दिया जाय ।

मिर्जा कमर, तथा अन्य शहजादे पहाड़गंज की ओर चलने को तैयार हो गये । बहादुर शाह की आंखें भर आईं ।

“कमर..... । मेरे जिगर के टुकड़े..... ।” बहादुरशाह ने रुधे हुए कंठ से कहा । मिर्जा कमर की आंखों का बांधा

हुआ बांध टूट गया। सम्राट ने उसे अपनी और इशारे से बुलाया। मिर्जा कमर दौड़कर बहादुर शाह के सीने से चिपट गया।

‘मुझे मुआफ करना मेरे आका। मैंने आपके नाम में हमेशा बट्टा लगाया है। मिर्जा ने फफकते हुए कहा।

“मिर्जा? वक्त को यों जाया न कीजिये। हिम्मत से काम लीजिये आप जल्द ही पहाड़गंज की ओर चलें।” पास खड़े एक अमीर ने कहा।

मिर्जा कमर किले के दरवाजे पर आ गये। पीछे मुड़कर, देखा कोई पचास कदम की दूरी पर बहादुरशाह रुमाल से आंसुओं को पोंछते हुए खड़े थे।

तीन

मिर्जा कमर तथा अन्य शहजादे बड़ी तेजी से किले से निकल कर नहर की सड़क पर आगये। सड़क के किनारे से “या अल्लाह आटा दिलादे” की आवाज आई। मिर्जा कांप उठे। मुड़कर देखने की हिम्मत न पड़ी। घोड़े पे एक एड़ लगा दी। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। पर तभी एक ओर से बीस अंग्रेजों ने धावा बोल दिया। तड़ातड़ गोलियों की बोछार होने लगी। शहजादे खून में तड़पने लगे।

गोरे जब निकट आये तो देखा, दो शहजादे परलोक का मार्ग ले चुके हैं। किन्तु एक की सांस चल रही है। एक गोरे ने जोवित शहजादे का हाथ पकड़ उठाया तो पता लग गया कि उसके चोट कहीं भी नहीं है। केवल घोड़े से गिरने

के कारण कुछ खुरेंच आ गई है। शहजादे को जीवित देख उसके हाथ पीछे की ओर बांध दिए गये। चार अंग्रेज उसे कैम्प की ओर ले चले।

कैम्प दिल्ली से बाहर पहाड़ी पर था, शहजादे कभी जिन्दगी में इतनी दूर पैदल न चले थे। शहजादे के माथे पर पसीना आ गया, प्यास के मारे गला चटख रहा था। सर चक्कर खाने लगा, पर तभी पीछे से एक धक्का लगा, शहजादा मुंह के बल गिर पड़ा। दो गोरों ने उसके हाथ पकड़ लिए और दो गोरों ने पैर। शहजादे को भूला से भुलाते वे उसे कैम्प में ले आये। कैम्प में गोरों के साथ कुछ काले भी थे।

“क्या नाम है तुम्हारा।” एक ने कड़क कर पूछा।

“कमर।”

“ओह ? साहब आलम मिर्जा कमर सुल्तान बहादुर। बहादुर शाह के लाडले नवासे।”

मिर्जा की आँखें नीचे को झुक गईं।

चार

विद्रोह कारियों की फौज हारकर भागने लगी। अंग्रेज धावा बोलते हुए शहर में घुस आये। बहादुरशाह को हुमायूँ के मकबरे में बंदी बना लिया गया। तैमूर वंश का झिलमिलता दीपक बुझ गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मचने लगी। गर्भवती स्त्रियों को जिन्दा जलाया जाने लगा। बाप बच्चों के सामने मारे जाने लगे। मातायें अपने कोमल पुत्रों को, अपने लाडलों को भूमि पर खून में लोटता देख कर चीखें

मारने लगीं । चंगेज खां और नादिरशाह की याद फिर से ताजा हो गई । चांदनी चौक में फांसी घर सजाया गया अंग्रेज जिसे चाहते लटकवा देते, जिसकी चाहें इज्जत ले लेते न कोई देखने वाला था न सुनने वाला । मानव के मारने का मूल्य एक मच्छर के मारने से अधिक महत्व न रखता था जुल्मों की देखकर जुल्म खुद शरमाने लगे, पर अंग्रेजों का पाषाण हृदय न पिघला ।

पहाड़ी कैम्प में मिर्जा रस्सी से जकड़े खड़े थे बदन सूख कर काँटा हो गया था आंखें गड्ढे में घंस गईं थी । सोने सा रंग सांवला पड़ गया, फूल सा चेहरा मुरझा गया था । मिर्जा को देखकर कोई उन्हें पहचान न सकता था । वे हर समय फांसी पर चढ़ये जा सकते थे या गोली से उड़ाये जा सकते थे । प्रत्येक पल का निकल जाना उनके लिए एक युग का बीत जाना था । सहसा एक खटके की आवाज़ हुई मिर्जा ने समझ लिया कि उन्हें या तो फांसी के लिए ले जाया जायेगा या उन्हें तोप से उड़ाया जाने के लिए । उनका दिल बड़ी तेजी से धड़कने लगा । एक अंग्रेज और एक हिंदुस्तानी फौजी अफसर मिर्जा के पास आये । मिर्जा ने अपनी आंखें बंद कर लीं । वे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे ।

हिंदुस्तानी फौजी अफसर ने कहना शुरू किया “मिर्जा कमर सुल्तान बहादुर ? आपके छुटकारे की आज्ञा साहब ने दे दी है पर आपकी सारी जायदाद जब्त कर ली गई है, अब आप जा सकते हैं, आपकी पेंशन के लिए गौर किया

जायेगा ।

×

×

×

“या अल्लाह ? आटा दिलादे की एक आवाज रोज सूरज निकलते ही नहर की सड़क के एक किनारे से सुनाई पड़ती थी, पर आज सहसा दो आवाजें एक साथ सुनाई देने लगीं ।

“या अल्लाह आटा दिला दे ।”

—

पंद्रह अगस्त

“बाय” बीड़ी मुँह से हटाकर और धुंये को आसमान में छोड़ते हुये सुखपाल ने आवाज दी । “आया बाबूजी” कहता हुआ एक बारह वर्ष का दुबला पतला लड़का, फटी कमीज और मैला पायजामा पहिने, नाक सिड़कते हुये आया और सुखपाल की मेज के सामने आखड़ा हुआ ।

“एक चाय !” सुखपाल ने आर्डर दिया ।

“अभी लाया साहब” कहकर लड़का दूसरी मेज पर से आर्डर लेने चला गया ।

“दीदार होटल एन्ड रस्तराँ” मिल के मजदूरों के लिये ताजमहल होटल से कम नहीं है । मिल के ठीक सामने सड़क के उस पार एक सिंघी ने चुँगी से जगह लेकर एक टीन डाल कर, कुछ हत्थों, और कुछ बिना हत्थों की कुर्सियाँ, और कुछ काली हरी मेजें, जिनका कि एक न एक पाया छोटा ही था डाल ली थी । एक बड़ा मैला सा रेडियो और ग्रामोफोन भी रख छोड़ा था । सुबह ७ बजे से जो रेकार्डिंग शुरू होती तो फिर रात के दस बजे ही समाप्त होती । मजदूर और राहगीर खास तौर पर रेकार्ड सुनने ही आते और एक कप चाय लेकर आध घंटे के लिये बैठ जाते । इन्हीं बातों से तंग आकर होटल के मालिक ने एक कागज पर लिख कर टाँग

रखा था—“कृपया बेकार न बैठें” पर इसका प्रभाव बैसा ही पड़ा जैसा कि थाने पर “रिशवत लेना और रिशवत देना दोनों पाप हैं” लिखे टंगे रहने का अथवा रेलवे स्टेशन पर “शिकायत असिस्टेंट स्टेशन मास्टर के दफ्तर में रखे शिकायत रजिस्टर में लिखें” लिखे टंगे रहने का पड़ता है।

सुखपाल बीड़ी के धुंये के बादल बनाता हुआ चाय की प्रतीक्षा कर रहा था, रेकार्ड चल रहा था—“जली जा चली जा चली जा आहों की दुनियाँ.....” साथ में सुखपाल की मेज पर उंगलियाँ चल रहीं थी और कभी कभी ओंठ भी हिल उठते। लड़का आया और चाय के प्याले को मेज पर रख कर चला गया, मेज हिल उठी, चाय प्याले से छलक कर प्लेट में आ गिरी। सुखपाल थोड़ा झुका और गरम गरम चाय का एक घूँट लिया। सामने सड़क पर अखबार वाला चिल्लाता जा रहा था।

“आगया आगया दो आने में आगया स्वतन्त्रता अड्डा आगया।”

सहसा सुखपाल को ध्यान आगया कि आज पंद्रह अगस्त है। वह पंद्रह अगस्त जो स्वतन्त्रता का पर्व है और उसके लिये हर पंद्रह अगस्त एक ताजा धाव लिये है। उसके हाथ का प्याला ज्यों का त्यों थमा का थमा रह गया। अतीत के एक एक चित्र उसकी आँखों के सामने आने लगे।

पंद्रह अगस्त सन सैतालिस से पहिले भी उसके घर पंद्रह अगस्त बड़े धूम धाम से मनाई जाती थीं। वह पंद्रह अगस्त ही थी जबकि उसके पहले पहल रोने से उसका सूना घर

गुंजित हो उठा था । और उसके बाद की फिर हर पंद्रह अगस्त बड़ी शान्ति शोक के साथ उसके यहाँ मनाई जाने लगी ।

यहीं तक नहीं, उसके लिये तो प्रत्येक पंद्रह अगस्त एक अपनी कहानी लिये हुये है एक अपना अलग स्थान बनाये हुये हैं ।

अगस्त सन् बियालीस ! उसे याद आया । वह भी कैसा जमाना था । चारों ओर बगावत की आग धधक रही थी । बच्चे बच्चे के दिल में उस समय अंग्रेजी हुकूमत के लिये नफरत थी, हर वर्ग से, हर कौने से माँग थी कि नौकरशाही खत्म हो, अंग्रेज भारत को छोड़ दें । पर जनता का उबाल एक नेतृत्व में न था, और न उस क्रांति का कोई एक संगठन कर्त्ता ही था । जगह जगह छोटे २ दल अलग २ नेताओं के नेतृत्व में बन गये थे । उस समय वह कालेज में पढ़ रहा था । कालेज में नवयुवकों का एक क्रांतिकारी दल था और वह था उसका मुखिया । धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ हो रहीं थीं । उसका पुलिस हाथ धोकर पीछा कर रही थी । पन्द्रह अगस्त से एक दिन पूर्व उसकी पुलिस से मुठभेड़ हो चुकी थी । वह जखमी हो गया था । “एक्शन” में पुलिस की गोली उसके बाँय हाथ को चीरती हुई निकल गई थी । उसने जाकर एक गाँव में आश्रय लिया । सारी रात हाथ से खून निकलना बन्द नहीं हुआ । उसे कमजोरी इतनी आगई थी कि उसके लिये एक कदम चलना भी असम्भव था । दूसरे दिन पुलिस ने वह सारा गाँव घेर लिया ।

पता नहीं कैसे उसके गाँव में छिपने की खबर गाँव के जमींदार राय साहब गोविंदसिंह के पास पहुँच गई बस फिर क्या था, राय साहब ने अपनी राय साहबी का हक अदा कर दिया। अब वही राय साहब नगर के सड़से बड़े देशभक्त हैं। तब राय साहब थे और अब संसद के सदस्य।

उसे सात वर्ष की सजा मिली। पर राजनैतिक समझौतों के कारण वह छियालीस में हो रिहा कर दिया गया, और सँयोगवश जिस दिन वह जेल के फाटक के बाहर आया उस दिन भी पन्द्रह अगस्त था।

वह दिन उसे कल की तरह याद है। उस दिन उसे फूलों से ढक दिया गया था। लोग उसके नाम की जय जयकार बोल रहे थे। उसकी माँ के आँसुओं का बाँध उसे देख कर टूट गया था वे आँसू मानों उसकी सारी गत यातनाओं को धो देना चाहते थे। वह दिन भर के बिछुड़े हुये बछड़े की तरह अपनी माँ से जा चिपटा था। और तब सहसा उसकी निगाहें माँ के पास सहमी से खड़ी लड़की पर रुक गई थी। माँ ने कुछ इशारा किया, यह लड़की कुछ आगे बढ़ी, फिर पीछे हटी और फिर आगे बढ़कर उसके गले में माला डाल दी और फिर माँ के पास आकर खड़ी हो गई। उसके गालों पर सुबह जैसी लाली छा गई थी और सुखपाल के बदन में एक विजली सी दौड़ गई थी।

घर आने पर पता लगा कि वह उसकी होने वाली पत्नी है। उस समय कितना प्रसन्न था वह। वह सोच रहा था कि वह उस समय संसार का सबसे भाग्यवान व्यक्ति है।

उसे लगा जैसे उसे सब कुछ मिल गया—इज्जत, नाम, और मन पसंद पत्नी। एक महीने के अन्दर ही उसका विवाह हो गया। कितना सुखी था वह। कितने आनन्द के दिन बीत रहे थे उसके। मुखलाल ने एक ठंडी साँस ली और चाय का एक घूँट लिया विचार धारा फिर बह उठी

. वह कितना निहाल हो गया था सत्या को पाकर। वह जैसे उसके लिये स्वर्ग की अप्सरा थी, पारिजात की सुगंध थी। वह उसकी गहरी नीली बड़ी बड़ी नशीली आँखों में डूब गया था। उसके लिये संसार में केवल एक ही व्यक्ति-त्व रह गया था और वह था सत्या का। सत्या ने उसे एक नया संसार दिया था, प्रेम का, ममता का, और भावुकता का।

जब कभी सुखपाल भावुकता में बह उठता—“सत्या तुम मेरी हृदय तंत्री की भंकार हो। तुम वह रागिनी हो जिसने कि मेरे अंतस्तल में सोये प्रेम को एक नया उभार दिया। तुम मेरे जीवन पथ को आलोकित करने वाली दीप शिखा हो। कभी ऐसा न हो कि मेरे हृदय तंत्री के तार टूट जाँय, मेरा जीवन पथ अंधकार मय हो जावे, रागिनी का स्थान कर्णा सिंसिकियाँ ले लेंवें। कहीं तुम मुझे धोका न दे देना सत्या।”

और तब सत्या उसके वक्षस्थल पर कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ती और उसके मुँह पर हाथ रखती बोलती।

“छिः कैसी अशुभ बातें निकालते हो मुँह से। फूल देवता पर केवल एक बार चढ़ता है।”

इसी तरह से उसके दिन गुजर रहे थे। तभी आया पंद्रह अगस्त सन् सैंतालीस। जब एक ओर आजादी के जश्न मनाये जा रहे थे तो दूसरी ओर बरबादी के आंसू बहाये जा रहे थे। एक ओर किन्हीं की माँओं और बहिनों की अस्मत्तें लूटी जा रही थीं तो, दूसरी ओर प्रसन्नता के दीप जलाये जा रहे थे। मानो उनके लुटते हुये सतीत्व की खिल्ली उड़ाई जा रही हो।.....

.....कल्पना करते करते सुखलाल के दाँत किट किटाने लगे। उसे प्रत्यक्ष सा दीखने लगा वह दृश्य।.....

पन्द्रह अगस्त सन सैंतालीस.....

उसकी पत्नी अट्टारह दिन से ज्वर में पड़ी थी। उस दिन उसे एक सौ चार डिग्री बुखार था, शहर में कर्फू लगा था। उनके पड़ोस वाला मुहल्ला लुट चुका था, उसमें एक भी जवान औरत बाकी न बची थी केवल कुछ बुढ़े और बुढ़ियाँ बच रहीं थीं, अपने जवान बेटों की लहाशों पर रोने के लिये। सब जानते थे कि अबकी उनकी बारी है।

उसके घर के दरवाजे की कुन्डी किसी ने जोरों से खट खटाई। उसने धड़कते हुये हृदय से दरवाजा खोला। उसके सर पर भारी आघात हुआ। वह चेतन हीन होकर गिर पड़ा। जब उसे होश आया तब उसका घर लुट चुका था। उसके वृद्ध पिता उसी के पास खून में लथपथ पड़े थे। और थोड़ी दूर पर उसकी वृद्ध माँ खून में सनी पड़ी थीं। उसकी दो जवान बहिनों को पाक सैनिक ले जा चुके थे। उस घर में केवल दो प्राणी बच रहे थे, एक वह स्वयं और

दूसरी उसकी बीमार पत्नी । शायद उसे मरा जान कर और सत्या को एक बेकार की चीज समझ कर छोड़ गये थे । सोचते सोचते मुखपाल के सीधे हाथ की मुट्टियाँ बँध गई । बीड़ी जलते जलते उसकी उंगलियों पर आ गई थी । एक भटके के साथ बीड़ी बाहर सड़क पर फेंक दी ।

.....विचार श्रंखला फिर जुड़ गई । चार वर्ष तक वह इधर से उधर भटकता रहा । कभी इस कैम्प में और कभी उस कैम्प में । इन चार वर्षों में उसे न मालूम कितनी बार भूख से हाथ मिलाने पड़े । न जाने उसे कितनी ठोकरें खानी पड़ी । इन मुसीबतों को थपेड़े से उसकी सत्या भी स्थिर न रह सकी ।

.....मुखपाल की आँखें सुख हो गई । हाथ की मुट्टी बँध गई । उसके होठ हिल उठे, धीरे से उसके मुँह से निकल गया “सत्या” । वह भी पन्द्रह अगस्त थी ।

उस दिन वह चार दिन से भूखा था । सत्या दो दिन से भूखी थी । उन दिनों वह अनुभव कर रहा था कि सत्या उसके प्रति उदासीन रहती है । वह उससे खिचती जा रही है । वह बेवस था । लाचार था । उसके पास अब वे साधन नहीं रहे थे । वह चार वर्ष से बेकार था । किसी न किसी वाचनालय में जाकर वह दैनिक पत्र में रोज पढ़ लेता था—“सरकार शरणार्थियों को कर्ज दे रही है, मकान बनवा रही है, नौकरियाँ दिलवा रही है, पर उसे अभी तक न कर्ज मिला था, न मकान और न कोई नौकरियाँ । वह चार वर्ष से बेघरवार और बे रोजगार था । और तब सहासा उस दिन उसकी एक वकील साहब से

भेंट होगई। वकील साहब ने उसे अपने यहाँ नकल करने पर रख लिया था। और यही नहीं उसे उन्होंने आधी तनख्वा भी पेशगी दे दी थी। सुखपाल को जैसे तिनके का सहारा मिल गया। थोड़ी देर के लिये वह भी आजादी की खुशी में खो गया।

रात को लौटकर वह कैम्प में आया। सत्या वहाँ नहीं थी। उसे यह बात कई दिन पहले से बता दी गई थी कि जब वह नौकरी की खोज में बाहर चला जाता है, तो उसके जाने के पश्चात् ठेकेदार उसके यहाँ अपनी कार में आता है। पर तब उसे विश्वास न हुआ था। वह न जानता था कि उसकी सत्या के लिये भी केवल पैसा ही एक माप है, कसौटी है। वह नहीं समझता था कि उसकी सत्या केवल इस लिये उसे छोड़ कर चली जावेगी कि वह उसे अच्छा पहिना नहीं सकता, अच्छा खिला नहीं सकता। उसका खून खौलने लगा। वह उसी उन्मत्त दशा में ठेकेदार की कोठी की ओर चल दिया।

ठेकेदार की कोठी सिविल लाइन्स में थी। उसे पता न चला कि वह कब ठेकेदार की कोठी के सामने आगया। उसी उन्मत्त दशा में वह डंडा फलाँगा कर ठेकेदार के सोने के कमरे के नीचे जा खड़ा हुआ। उसे आवाज पहिचानते देर न लगी। सत्या कह रही थी—

“तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ। काश तुम मेरा दिल चीर सकते और उसमें देख सकते। आओ चलो कहीं दूर चले चलें, जहाँ उसकी परछाईं तक न पहुँच

सके ।”

ठेकेदार की हँसी की ध्वनि पपीते के पेड़ों को चीरती हुई निकल गई । ठेकेदार जोर जोर से हँसता हुआ ऊह रहा था ।

“उस लकड़बग्घे से डर रही हो तुम ! तुम ठीक से नहीं जानती । चौबीस घन्टे के अन्दर ही अन्दर किसी भी बड़े से उड़े अफसर का तबादला करा सकता हूँ । शहर के नेता मेरी उँगलियों पर नाचते हैं, और अफसर मेरी आंख के इशारे पर—

वह और अधिक नहीं सुन सका । पेड़ के सहारे चढ़ एक ही उछाल में वह खिड़की पर आ गया । उसे देखते ही सत्या एक चीख के साथ ठेकेदार के बाहुपाश से अलग जा खड़ी हुई । उसमें न जाने कहाँ से शक्ति आगई थी । एक ही भटके में खिड़की तोड़ दी । खिड़की के शीशे उसके हाथों में घुस गये । उसके सर पर खून सवार था । वह चाह रहा था कि दोनों का गला घोट दे ।

ठेकेदार जोर से चीख उठा । इस चीख चिल्लाहट से कोठी के सब नौकर इकट्ठे हो गये । सुखपाल पकड़ लिया गया । ठेकेदार ने रस्सीयों से बँधे सुखपाल पर अपनी सारी वीरता दिखाई, आखिर सत्या पर रोव जो जमाना था । उसे जब होश आया तो वह हवालात में था ।

सुखपाल पर मुकदमा चला । सत्या अदालत के सामने पेश की गई । उसने साफ साफ कह दिया कि वह सुखपाल को जानती तक नहीं सुखपाल को पाँच वर्ष की सजा हुई ।

सुखपाल जेल में सुखी था। वहाँ उसे रोटी की चिंता नहीं थी, ठेकेदार की कार वहाँ दिखाई नहीं दे सकती थी। वह चाहता था कि वह सदैव जेल में ही बना रहे पर आखिर एक दिन उसकी सजा पूरी हो गई।

जेल से छूटने पर पहिला काम उसने किया कि वह अपना शहर छोड़ कर यहाँ आगया।

अनजान शहर। वैसे ही नौकरी मिलना मुश्किल था, तिस पर वह परदेसी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। और आज फिर पन्द्रह अगस्त है।

सुखपाल ने फिर एक ठन्डी साँस छोड़कर, ठन्डी चाय का घूँट लिया, कुछ मुँह बनाते हुए प्याले को मेज पर रख दिया। एक खन्न सी आवाज हुई। सुखपाल उठकर काउन्टर पर आया। दो आने निकाल कर तशतरी में डाल दिये। बाहर आकर जेब में हाथ डाला, सब पैसे निकाले और गिने—कुल तेरह आने बच रहे थे। शाम को कहीं खाना भी है, और फिर कल...

सामने से आठ दस बूढ़े और बच्चे हाथ में एक बड़ा तिरंगा लिये चले आ रहे थे और नारे लगा रहे थे—

“महात्मा गाँधी की जय हो।” “जवाहर लाल नेहरू की जय हो।” “पन्द्रह अगस्त जिन्दाबाद।”

सुखपाल बुदबुदा उठा “पन्द्रह अगस्त”

बग्घी रोड ।

नाम था महेशचन्द्र गाँधी, पर न तो उनका गुजरात से कोई सम्बन्ध था और न उनकी कोई गंधी की दुकान ही । बात यह थी कि जिस दिन श्रीमान् जी ने पहले पहल पूर्व में लाल लाल गोला उठते देखा था, उस दिन महात्मा गांधी जी जिला मेनपुरी का दौरा कर रहे थे, बस तभी से नाम पड़ गया गाँधी ।

हाँ तो हमारे गाँधी जी बीमा कंपनी के इन्स्पेक्टर हो गये थे और कंपनी की ओर से उन्हें एक नई बी० एस० ए० मोटर साईकिल मिल गई थी । नई मोटर साईकिल और नया नया शौक । चौराहे पर दूध पीने जाते तो मोटर साईकिल पर और पास के लेटरबक्स में पत्र डालने जाते तो मोटर-साईकिल पर ।

बलबीर का पत्र आया था । शादी थी । जाना जरूरी था । पत्र में ताजपुर तक पहुंचने का रास्ता बताया था । रास्ता बड़ा सीधा था । मुहम्मदाबाद तक तो पक्की सड़क थी और मुहम्मदाबाद से ताजपुर के लिये सीधी बग्घी रोड गई थी जो बलबीर की हवेली के नीचे ही जाकर समाप्त होती थी ।

नई मोटर साईकिल के सदपयोग का सुअवसर आगया
११०

था ।

“बिना मोटर साईकिल के जाना ? कोई रंग नहीं ।”
गाँधी जी ने अपनी स्वाभाविक भाषा में कहा ।

“और फिर यह मोटर साईकिल आवेगी किस काम ।”
मैंने उनकी बात का समर्थन किया ।

मोटर साईकिल पर बैठ कर एक लम्बा सफर किया जाय । यह न जाने कितनी पुरानी आकांक्षा थी। अपनी इस इच्छा की पूर्ति का इससे और अधिक उपयुक्त और कौन सा अवसर आवेगा ?

तय होगया कि सुबह आकाश लाल होते ही, जब कि पक्षी उड़ उड़ कर दाने की तलाश में जाते हैं, हम लोग ताजपुर को चल देंगे । मुहम्मदाबाद से गुप्ता जी को साथ लेना था । गुप्ता जी बड़े सज्जन और खातिर पसन्द आदमी हैं । अपने गाँधी जी के शब्दों में “गुप्ता जी के यहाँ चल कर गुलाबजामुनों पर चोट होवेगी ।”

उनके यहाँ कम से कम एक घन्टे तो रुकना ही पड़ेगा और फिर डेढ़सौ मील का सफ़र, अतः जल्द चलना ही ठीक समझा ।

जितनी साहित्यिक रुचि अपनी है उससे दुगनी, घोर असाहित्यिक रुचि है गाँधी जी की । कविता का नाम सुनकर उन्हें उल्टी आने लगती हैं और कहानी एवं उपन्यास का नाम सुनकर बुखार ।

मुहम्मदाबाद तक का रास्ता मौन ही गुज़रा । हम भली भाँति जानते थे कि यदि कहीं भूल से भी हमारे मुँह से कोई

साहित्यिक बात निकल गई तो बस फिर मार्ग से ही लौट आने में ही खैरियत रहेगी ।

अच्छी खासी खातिर^१ हो जाने के बाद मुहम्मदाबाद से गुप्ता जी को साथ लिया । उसी इलाके के रहने वाले थे । उनसे अधिक और कौन रास्तों से परिचित होगा । ताजपुर के लिये उनसे सीधा और अच्छा सा रास्ता पूछा । उन्होंने भी वही जबाब दिया “बग्घी रोड से बढ़िया और कोई रास्ता नहीं गाँधी ने एक बार हिचक दिखलाई । बोले—

“रास्ता खराब तो नहीं है ?

मैंने उनकी शंका का तुरन्त समाधान कर दिया ।

“अरे भले मानस जब बग्घी जैसी नाजुक सवारी चल सकती है तो फिर क्या तुम्हारी मोटर साईकिल नहीं चलेगी ।”

गाँधी जी को पूरी तसल्ली हो गई । बग्घी रोड वास्तव में बग्घी रोड निकली । रास्ता कच्चा जरूर था पर पक्के को मात कर रहा था । मोटर साईकिल ४० और ४५ की रफ्तार से भागी जा रही थी । गाँधी के पीछे गुप्ता जी और गुप्ता जी के पीछे मैं बैठा हुआ था । रास्ते भर जो मौन रहा उसकी कसर निकाली जा रही थी । नमक के भावों से लेकर कार के भावों तक की बातें हुई । पञ्चवर्षीय योजना से लेकर तृतीय महायुद्ध तक पर विचार हुआ । अर्थशास्त्र, राजनीति और दर्शन आदि सब शास्त्र बातों के विषय बने हुये थे । गुप्ता जी और हम—जोड़ भी क्या ठीक बैठा था । हम दोनों एक दूसरे पर अपने सामान्य ज्ञान की धाक जमाने का प्रयत्न कर रहे थे ।

“वाह । गुप्ता जी देखा ग्राम्य जीवन भी क्या है ।”
मैंने विषय को बदलने की गरज से कहा ।

“जीवन क्या है—सब दूर के ढोल हैं ।”

गुप्ता जी यदि विरोध न करते तो भला बात आगे कैसे बढ़ती ।

“नहीं गुप्ता जी यह बात नहीं । बात दर असल यह है कि दिया तले अन्धेरा होता है । देखो मस्ती में लहलहाते अरहर के पेड़ चेतन कहै जाने वाले मानव को कितना महान सन्देश दे रहे हैं । यह पीली केसर सी खिली सरसों और यह उसका अवगुँठन सा उठता हुआ, अठखेलियाँ करता हुआ पवन, भला नगरों के कृत्रिम जीवन में कहीं रक्खा है यह सब कुछ । तभी तो मैथिलीशरण जी गुप्त ने कहा है—
में गुनगुना उठा—

“अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है—”

पर तभी एक जोर का धक्का लगा । गुप्ता जी की चीख कानों में सुनाई दी । आँखें बंद सी हो गईं । रेत का एक बादल सा आँखों में घुस गया । बड़ी मुशकिल से आँखें खोलीं मोटर साईकिल की सीट की जगह रेत का ढेर नीचे था । कोई पाँच हाथ दूर गुप्ता जी आँधे मुँह पड़े दण्डवत सी कर रहे थे । और कोई बीस हाथ दूर गाँधी जी मोटर साईकिल को उसके स्टैंड पर खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे ।

गुप्ता जी को हाथ पकड़ कर उठाया । चोट तो कोई अधिक न थी पर वे घबड़ा अधिक गये थे ।

“देखलो अपनी बगधी रोड की ओर” गांधी ने व्यंग सा कसते हुये कहा ।

सड़क का बुरा हाल था । दूर तक लहरें सी नज़र आरहीं थीं । जहाँ तक नज़र जाती आध आध और एक एक हाथ के गढ़े और रेत ही रेत दिखाई देता ।

“हे भगवान ! यह बगधी रोड है ।” मुँह से निकल ही गया ।

“जी हाँ ! यह वही बगधी रोड है, जिस पर से यहाँ के जमींदारों की बगधीयाँ गुजरती थीं ।” गांधी ने उसी व्यंग के स्वर में कहा ।

“रास्ता तो नहीं भूल गये ।” तनिक अविश्वास सा करते हुये पूछा ।

“कोई और रास्ता देखा था रास्ते में ।”

“नहीं तो ।”

“तो फिर ।”

अब चुप होना पड़ा । समझ में न आ रहा था कि क्या किया जाय ? मोटर साईकिल आगे जा नहीं सकती थी । पीछे लौटने से बड़ी और कौन सी मूर्खता होती । बराबर से एक किसान सर पर पगड़ बांधे, कोरा सफेद कुर्ती और मैली धोती पहिने, कंधे पर लाठी रक्खे और उस लाठी के सिरे में तेल से चिकने किये दोनों चमरोधे झूते लटकाये मस्त स्वर में गाता जा रहा था ।

“क्यों भैया ! यह सड़क आखिर तक ऐसी ही है ?” हमने उसे रोक कर पूछा ।

“नहिंन बाबूजी । तनिक दूर तक यह पट्टी ऐसी है ।”
उसने बड़ी बेपरवाही से कहा ।

“और आगे ।” मैंने बड़ी उत्सुकता से पूछा ।

“आगे तीन सड़क कि शहरन की सड़कन को मात करि है ।”

“ताजपुर कितनी दूर है ।” हमने फिर पूछा “दो चार कोस होइ हैं ।” उसने उसी लापरवाही से उत्तर दिया ।

“और मुहम्मदाबाद”

“वह दूइ चार कोस होइ है ।”

“और फर्हखाबाद” गाँधी ने पूछा ।

उसने गाँधी की ओर साशचर्य देखा और हँस कर चलने लगा ।

“क्यों उस्ताद । महमानी खाने जा रहे हो क्या ?” गाँधी ने अपनी स्वाभाविक भाषा में पूछा । वह हँस दिया ।

“हमें भी ले चलो अपने साथ । हम भी महिमानी खालेंगे ।” गाँधी ने फिर उसे छेड़ा ।

“अपनी फट फटिया छोड़ देउ तब चलउ हमारे सँग ।” कहकर वह चल दिया ।

“अच्छा यार चलो हम भी आ रहे हैं पीछे पीछे ।” कह कर गाँधी ने हम लोगों की ओर देखा और बोले—

“खड़े खड़े क्या देख रहे हो ? चलो धक्के लगाओ ।
इस बगधी रोड पर अपनी मोटर-साईकिल तो चल नहीं सकती ।”

लाचारी थी । मोटर साईकिल में हम तीनों धक्के

लगा रहे थे, और सबसे अधिक जोर मुझे लगाना पड़ रहा था ।

मोटर साईकिल को ढकेलते ढकेलते लगभग एक घंटा हो गया । एढ़ी का पसीना चोटी पर आगया । कलेजा कटने सा लगा । अब जो सामने देखा तो रोएं खड़े हो गये । सड़क काट दी गई थी । चारों ओर पानी ही पानी था । दोनों ओर के खेत पानी से भर रहे थे । अब आगे कैसे जाया जाय । लकड़ी का तख्ता मिला जाय तो काम बन जाय दोनों ओर के खेतों में किसान काम कर रहे थे ।

सड़क पर से आवाज लगाई ।

“क्यों भइया ! एक तख्ता मिल जावेगा क्या ?” पर कोई जवाब न मिला ।

“लो मैं अभी लाता हूं ।” गुप्ताजी ने कहा ।

थोड़ी देर बाद गुप्ताजी मुँह लटकाये लौट आये और बोले—

“सालों के दिमाग होगये हैं । सीधे मुँह बात ही नहीं करते । टका सा जवाब दे दिया ।”

“कोई बात नहीं । तीन लोग मिलकर तो मोटर को भी उठाकर रख देंगे । यह तो मोटर साईकिल ही है । लो लगाओ तो हाथ ।” मैंने जोश के साथ कहा । पैन्टों को मोड़कर ऊपर चढ़ा लिया । मोटर साईकिल को बड़े साध कर पानी में उतारा । धीरे धीरे संभल संभल कर हम लोग कदम उठा रहे थे । एक धचाक की आवाज हुई वेलेंस बिगड़ गया । अभी

तक हमने मोटर साईकिल पर सवारी की थी । अब मोटर साईकिल हम पर सवार थी । मुँह पर कीचड़ का पेन्ट हो गया था, दातों में कीचड़ की मिस्सी लगी हुई थी, और बालों में कीचड़ का लोशन । कीचड़ में सन कर अब हाल हो गया था । खेतों में काम करने वाले किसान हमें देख देख हँस रहे थे । युगों से हम उनकी दुर्दशा देखकर खुश होते आ रहे थे, आज उनकी बारी थी ।

जैसे जैसे उठे । जहाँ तक हो सका हाथ मुँह साफ किया । तीनों ने मिलकर जोर लगाया । मोटर साईकिल पार होगई । सामने वही हाल था । जहाँ तक नजर जा रही थी वहाँ तक सड़क की छाती पर फोड़े से उठे थे । पास से एक बैलगाड़ी निकली । गाड़ीवान अपनी मस्तानी आवाज से आल्हा की एक कड़ी गाता जा रहा था ।

“क्यों भैया यही बगधी रोड है ।” मैंने पूछा ।

“हाँ जू ! यही डवलवमेंटी बगधी रोड है ।” उसने उत्तर दिया ।

“डवलवमेंटी ? क्या मतलब ?”

“अब जहु सड़क डवलवमेंट के हाथन में आय गई है ।”

गाड़ीवान ने अपनी भाषा को सुधारने की कोशिश करते हुये कहा । अपनी समझ में कुछ न आया । गाड़ीवान अलाप उठा—

“इकठे साखन के जियरा पर जूमे सात लाख तरवार ।”

बैलगाड़ी चूँ-चरमर.....चूँ चरमर की आवाज करती

हुई, धूल उड़ाती हुई आगे बढ़ चली, मानों वह आज की वैज्ञानिक सभ्यता का मखौल उड़ा रही हो ।

हम लोगों की सारी हँसी पीछे बहते पानी में बह गई थी । एक बार पीछे मुड़कर देखा, और फिर आगे चुपचाप बगधी रोड पर मोटर साईकिल में धक्के लगाने लगे ।

तफतीश और रिपोर्ट

सारे गाँव में यह खबर कि दरोगाजी, कप्तान साहब और न जाने कौन-कौन हुक्काम तफतीश को आये हुए हैं बिजली की तरह फैल गई। और फिर आए भी क्यों न किसी मामूली आदमी के घर तो चोरी हुई नहीं थी। जमींदारियाँ चली गईं तो क्या हुआ डेढ़ हजार बीघे का फार्म, शहर की कोठियों और सवाए पर उठा रुपया तो कहीं नहीं गया।

बड़ी हवेली वालों का अब भी वही दौर-दौरा था पहले राजा बहादुर थे और अब पद्म विभूषण बनने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। दौरे पर आये हुए प्रत्येक मंत्री और छोटे-बड़े अफसर सब उनके महमान बनते। “बड़ी हवेली वालों के यहाँ चोरी हुई” गृह-मंत्री तक यह समाचार पहुँच गया था। सीनियर सुपरिन्टेंडेंट पुलिस, सर्किल इन्स्पेक्टर, थाना इन्चार्ज आदि सब तफतीश के लिये आये हुए थे।

बड़ी हवेली के बाग में छोटा सा दरबार लग गया। शक में बुलाये गये फतहपुर-रामू के और आस-पास के लोग एक कतार में बैठा दिये गये। थाना इन्चार्ज जगदीश्वर सिंह सब इन्स्पेक्टर महावीर सिंह के लिये दो आराम कुर्सियाँ पड़ गईं और उन्हीं के पास एक मेज और कुर्सी हैड मुंशी के लिये भी ढाल दी गयी।

छोटे दरोगा जी ने हर एक से सवाल पूछने शुरू किये—
बड़े दरोगा जी सिगरेट के कस लगाते हुए बड़े गौर से सवाल
और जवाबों को सुन रहे थे। हैड मुंशी भी बड़ी तत्परता से
बयानों को कलम बन्द करने लगे।

छोटे दरोगा जी ने अपनी आफिसरी आवाज से पूछा—

“क्या नाम है तेरा ?”

“भींगुरिया”

दरोगा जी चौंक से गये। अभी तक हर एक ने उन्हें
अपना नाम बतलाने से पहले सरकार और हज़ूर जैसे विशेषणों
से सम्बोधित किया था—इस छोटे से उत्तर के लिए वे
तैयार न थे—बड़े दरोगाजी ने सिगरेट को एक ओर फेंकते
हुए, और कुर्सी पर जरा संभल कर बैठते हुए भींगुरिया को
आँखें गढ़ाकर देखना शुरू किया—रंग गेहूँआ, गोल और भरा
हुआ चेहरा, ऊँचा ललाट, घुंगराले बाल सब मिलकर एक
जंचता हुआ व्यक्तित्व था। बदन पर और लोगों से साफ कपड़े
भी पहने हुए था।

छोटे दरोगा जी ने होठों को दाँत से काटते हुए फिर
पूछा—

“कौन जात ?”

“हिन्दू”

वही छोटा सा उत्तर मिला दरोगा जी ऐसे उत्तरों ने
अभ्यस्त न थे। उनकी आँखों में लाल डोरे आ गये भौंहेँ तन
गईं, बदन कांपने लगा और फिर……अश्लीलतम वाली देते
हुए बोले……

“अब्रे……हिन्दू तो सब हैं ?”

“ये गालियाँ तो आप अपने मातहतों के लिए ही रखिए।”

दरोगाजी ने अपनी दस साल की नौकरी में कभी इस प्रकार का उत्तर न सुना था। एक झटके के साथ वे कुर्सी पर से उठ बैठे पर भींगुरिया के चेहरे पर की दृढ़ता और कुर्ते में से निकले कसरती सीने को देख कुछ ठिठक गये—पर तभी पास में खड़े आठ-दस सिपाही एक दम भींगुरिया पर दूट पड़े। दरोगा जी ने भी आगे बढ़कर एक हाथ कस कर मुँह पर मारा और एक ठोकर पेट में दी, भींगुरिया गिर पड़ा उसके दोनों हाथ पीछे बांध दिए गए, दरोगा जी ने पाँच सात लातें मारते हुए कहा……

“सालों के दिमाग तो देखो इस सरकार ने कितने चढ़ा दिये हैं……चोरी करते हैं और सीना जोरी करते हैं……स्वराज्य क्या हुआ किसी को समझते ही नहीं—अभी लो साला कबूल करता है।……अरे जोरावर, राम दयाल, लालचन्द साले का हवाई जहाज बनाओ।”

भींगुरिया के मुँह में से खून निकलने लगा था, उसकी आँखें जल रही थीं, पर वह बोला कुछ नहीं, केवल अपने पीछे बंधे हाथों को एड़ने लगा।

दरोगा जी की आज्ञा सुनकर दो सिपाही एक छोटी खाट को ले आए, भींगुरिया को लाकर खाट के सिरे पर खड़ा कर दिया और उसके एक पैर को एक पाए से और दूसरे को दूसरे पाये से बांध दिया—चार सिपाहियों ने मिलकर उसे

का दिया और उसके हाथ खोलकर दूसरे सिरे के दोनों यों से बांध दिये । भींगुरिया ने भी किसी प्रकार का विरोध किया वह भली भाँति जानता था कि सौ को सती क्या र सकता है ।

दरोगा जी उठ कर उसके पास गये और उसके सिर के तलों को पकड़ कर एक झटका देते हुए बोले “क्यों बे...माल तलाएगा या नहीं” भींगुरिया जानता था कि यह सबाल तो बल पिटाई का बहाना मात्र है अतः वह चुप रहा । दरोगाजी एक ठहाका मारते हुए सिपाहियों की ओर देखते हुए फिर हा.....“जरा हवाई जहाज को चालू तो करना साले के भी दिमाग ठीक होते हैं ।”

इतना कहना था कि बारी-बारी से सिपाही खाट में उल्टे घे भींगुरिया को पीछे से ठोकरें मारने लगे—हर ठोकर र भींगुरिया के मुँह से केवल एक उह की आवाज निकलती र वह छोटे बड़े दरोगा जी के ठहाकों में विलीन हो जाती ।

दो

शाम हो गई थी, दिन भर मुनियाँ भींगुरिया की राह खती रही—आज उसका न जाने क्यों मन कुछ भारी-भारी था—उसे न जाने क्यों रह-रहकर खिजलाहट आती थी । से न तो आज भूख ही लगी और न किसी काम में उसका न ही लग रहा था ।

रह-रह कर वह खीज उठती—“यही समय है यदि हसान ने मेहनत न की तो बस पेट से पत्थर बांधने पड़ेंगे र आज न जाने वह कहाँ चला गया है ।” अपनी खिजला-

हट वह छोटे-छोटे दोनों बच्चों पर उतारती गोद का तीसरा मासूम बच्चा भी उसकी भुंभलाहट का पात्र बन जाता ।

भींगुरिया और मुनियाँ का जोड़ा फतहपुर-रामू में तो क्या आस पास तक प्रसिद्ध था । उन्हें देखकर उनकी जाति वालों के दिलों पर तो साँप लोटता ही था और जाति वाले भी सदैव ईर्ष्या करते थे । उन दोनों का अपना सीमित संसार था—भींगुरिया, मुनिया, तीन साल का बड़ा लड़का और डेढ़ साल का छोटा और तीन मास की मासूम बच्ची बस इतने में ही वे सीमित थे । गाँव में कभी किसी ने यह नहीं सुना कि आज दोनों में अनबन हुई । दोनों डटकर मेहनत करते और चैन से रहते—न ऊधो का लेना न माधव का देना । उन्हें किसी बात की परवाह न थी उनकी यहो मस्ती औरों की ईर्ष्या का कारण बनी हुई थी ।

जब शाम तक भींगुरिया लौट कर न आया तो मुनिया के हृदय में एक अज्ञात सी शंका धीरे-धीरे उठने लगी । तभी पड़ोस का एक लड़का भागा-भागा आया और मुनियाँ से घबराता हुआ बोला—“चाची ? चाची ? चाचा को बड़ी हवेली में पुलिस वाले बहुत मार रहे हैं ।”

मुनियाँ को जैसे हजार बिच्छुओं ने डंक मार दिया—सर्दियों के दिनों में भी माथे पर पसीना आ गया—दो मिनट तक तो वह आँखें फाड़े दिवाल की ओर चुपचाप देखती रही और फिर यकायक उठकर गोद में बच्ची को ले बड़ी तेजी से दरवाजे में से निकल कर बड़ी हवेली की ओर चलदी—बड़े लड़के ने तोतली आवाज में पूछा:—

“मां ! कां . . . जा . . . ल . . . ई . . . ओ ?”

पर मुनियाँ ने कोई उत्तर न दिया और न फिर देखा ही—जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं ।

तीन

लगभग एक घंटे तक भींगुरिया पर ठोकें पड़ती रहीं—दरोगा जी ने कल्पना की थी कि भींगुरिया रोयेगा, तड़फेगा, चिल्लायेगा, गिड़गिड़ाएगा और माफी माँगेगा—पर भींगुरिया के मुँह से आवाज तक न निकाली—पीछे ठोकें पड़ते-पड़ते मुँह से खून टपकने लगा था । एक सिपाही ने जो भींगुरिया की पथराई हुई आँखें देखीं तो वह घबड़ा गया और दरोगा जी से डरी हुई सी आवाज में बोला “दरोगा जी ? अब मार मत लगवाइए साला कहीं मर नहीं जाय”

दरोगा जी ने उसी प्रकार हँसते हुए कहा “साला मक्कार बनाता होगा ।” दरोगा जी उठकर भींगुरिया के पास गये । ठोड़ी पर एक लात मारी, उसकी गरदन एक ओर लुढ़क गयी—भींगुरिया की आँखें रुट गईं थी मुँह और नाक से खून टपक रहा था—चेहरा स्याह पड़ गया था । दरोगा जी हड़बड़ाकर पीछे हट गए और उसी घबराहट भरे स्वर में कतार में बैठे लोगों से बोले—“आप लोग अब घर जा सकते हैं—मुलजिम मिल गया है आप लोगों को हमने जो तकलीफ दी उसके लिए आप हमें माफ करें । . . .”

जब सब लोग चले गये तो छोटे दरोगा जी ने बड़े दरोगा जी के कान में कुछ कहा—बड़े दरोगा जी के चहरे का रंग भी एक दम बदल गया । दोनों भींगुरिया के पास

आये—छोटे दरोगा जी के पैर काँपने लगे माथे पर पसीना आ गया उनकी भींगुरिया को छूने तक की हिम्मत न पड़ी। बड़े दरोगा जी ने भींगुरिया की नाक पर हाथ रखा और घबरा कर पीछे हटते हुए पास खड़े सिपाही से कहा “इसके हाथ पैर सब खोल दो, मुँह पर जरा पानी तो डालो।”

भींगुरिया के हाथ पैर खोल दिये गए चार सिपाहियों ने उसे उठाकर जमीन पर लिटा दिया—बड़े दरोगा जी ने डाँटते हुए सिपाही से कहा—“यहाँ नहीं अन्दर कमरे में ले जाओ। सबके चेहरों की हवाइयाँ उड़ी हुई थीं।”

सिपाहियों और दोनों दरोगाजीयों का घबराहट के मारे बुरा हाल था बराबर वे अपने-आपों पर जीभ फेरते और माथे पर का पसीना पोंछते। सुपरिन्टैन्डेंट साहब का शिकार से लौटने का समय हो चला था। उनकी समझ में न आ रहा था कि क्या किया जाय। जीप की आवाज सुनाई दी घबड़ाहट और भी बढ़ गई।

जीप में से सुपरिन्टैन्डेंट साहब, सर्किल इन्स्पेक्टर और बड़ी हवेली वाले ठाकुर विक्रमसिंह आदि उतरे। जीप में मरा हुआ एक हिरन रखा था—ठाकुर साहब ने चौकीदार को आवाज लगाई और हिरन को उतारने की आज्ञा दी।

चारों ओर एक अजीब प्रकार का सन्नाटा था। सिपाहियों और दरोगाओं के चहरे फक पड़े हुए थे आखिर सुपरिन्टैन्डेंट साहब ने पूछा :—

“क्या बात है ?”

पर किसी ने जुबान तक न हिलाई। दुवारा फिर कड़क

कर पूछा—

“हज़ूर…………” बड़े दरोगा जी ने कुछ कहने की कोशिश की “हज़ूर क्या ? साफ क्यों नहीं बोलते क्या बाप मर गया है ?”

“जी…………।” फिर बड़े दरोगाजी ने कहने का प्रयत्न किया ।

“जी बी—जी जी क्या है ? साफ क्यों नहीं कहते ।”

“हज़ूर मैं आपसे कुछ अकेले में कहना चाहता हूँ ।” आखिर बड़ी हिम्मत करके बड़े दरोगा जी ने कह ही दिया । सुपरिन्टेंडेंट साहब और दरोगाजी एक ओर को हट गये दरोगा जी थोड़ी देर तक कुछ कहते रहे फिर सुपरिन्टेंडेंट साहब के पैरों पर गिर पड़े ।

सुपरिन्टेंडेंट साहब के चहरे का रंग भी एक दम बदल गया । ठाकुर साहब, सुपरिन्टेंडेंट साहब और दरोगा जी, भींगुरिया को देखने कमरे में गये तो भींगुरिया को देखकर ठाकुर साहब के आँसान जाते रहे ।

सुपरिन्टेंडेंट साहब, ठाकुर साहब को बड़ी दिलासा देते हुए बोले—“ठाकुर साहब आप कोई फिक्र न कीजिए अभी सब मामला ठीक हुआ जाता है ।”

“और तो मुझे कोई डर नहीं पर इसकी औरत को आप नहीं जानते मुझे केवल उसी ओर से डर है ।” ठाकुर साहब बड़े घबड़ाते हुए बोले ।

“उसको मैं ठीक कर लूँगा ऊपर की आप ठीक कर लें ।” और फिर सुपरिन्टेंडेंट साहब दरोगा जी की ओर मुँह करके

बोले “मुझे तो इन दरोगाओं पर गुस्सा आता है । सालों को इतनी भी लियाकत नहीं कि काम किस तरह करना चाहिए और तिस पर दरोगाई करने चले हैं ।”

दरोगा जी नीची निगाहें करे खड़े रहे ।

बाहर एक नारी का स्वर सुनाई पड़ा—

“पाओं पड़ती हूं तुम्हारे कहाँ है वह बता भर दो मैं दरोगाजी के और कप्तान साहब के पैरों पड़कर उन्हें छुड़ा लूंगी उन्होंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है उनकी जगह मुझे पीट लो—मुझे जेल भेज दो—जो चाओ सो करो बस उन्हें छोड़ दो पावों पड़ती हूं तुम्हारे—बतादो कहाँ है वह...।”

“अब क्या होगा सुपरिन्टेन्डेंट साहब जिसका मुझे डर था वही हो गया—मुनियाँ आ गई...।” ठाकुर साहब ने घबड़ाते हुए कहा ।

“सब ठीक हो जावेगा आप बिलकुल न घबड़ाएँ” सुपरिन्टेन्डेंट साहब ने दिलासा दिलाते हुए कहा ।

सुपरिन्टेन्डेंट साहब दरोगा जी को कमरे के एक कोने की ओर ले गए और धीरे-धीरे कुछ समझाया । दरोगा जी एक कदम पीछे हटे और फिर सुपरिन्टेन्डेंट साहब को सैलूट देकर बाहर निकल आये ठाकुर साहब और सुपरिन्टेन्डेंट साहब हवेली के अन्दर चले गए ।

चार

दरोगा जी जैसे ही बाहर आए मुनियाँ ने गोद की मासूम बच्ची को उनके पैरों पर डाल दिया और स्वयं ने भी उनके पैर पकड़ लिए । एक बार को दरोगा जी का भी दिल कांप

उठा पर दूसरे ही क्षण अपने को स्वस्थ कर बोले—

“तुम, भींगुरिया की औरत हो क्या ?”

“हां माई बाप कहाँ है वह !—उसे कहीं अधिक तो नहीं मारा आपने—कैसे बताऊं आपको—उसका किसी में कोई हाथ नहीं—उसे खुशामद करनी नहीं आती सरकार । इसीलिए सबका बुरा है और जरा तेज स्वभाव का है । अगर आपसे कुछ कह दिया हो तो मुझे मार लीजिए, मुझे जेल भेज दीजिए, जो चाहो सो कीजिए—मेरा कोई नहीं है, मैं लुट जाऊंगीं मैं कहीं की न रहूंगीं...” मुनियाँ ने दरोगा जी के दोनों पैर कस कर पकड़ लिए थे—वह फफकती जा रही थी और कहती जा रही थी...

तू क्यों इतनी घबड़ा रही है वह ठीक है बस सुबह तक छोड़ दिया जायगा तू खुद अपनी आंखों से देख लीजियो लेकिन एक शर्त पर—

“सरकार सब शर्तें मंजूर हैं ।” मुनियाँ ने दरोगा जी के पैरों पर पड़ी रोती हुई बच्ची को उठाते हुए कहा ।

जा तू एक थाली में उसके लिए खाना ले आ वह दिन भर का भूखा है तू अपने हाथ से ही खाना दे दीयो तब तो तुझे तसल्ली हो जावेगी लेकिन शर्त यह है कि तू उससे बात नहीं करेगी—उसके कमरे के पास वाले कमरे में ही साहब हैं और अगर उन्हें इस बात की भनक भी पड़ गई कि तू भींगुरिया से मिलने आई है तो बस मुझे नौकरी से हाथ धोना पड़ जायगा आखिर मेरे भी तो बाल बच्चे हैं”

“बस सरकार मैं देख भर लूँ—आप विश्वास रखिए मैं

बोलूंगी नहीं, भगवान करे आपकी तरकी दिन दूनी रात चौगुनी हो..." कहते कहते मुनियाँ ने अपना माथा दरोगा जी के पैरों पर फिर टेक दिया ।

“बस-बस-बस तू जल्दी से एक थाली में खाना ले आ” दरोगा जी ने अपने पैरों को पीछे हटाते हुए कहा ।

मुनियाँ दौड़ी-दौड़ी घर खाना लाने गई ।

बड़े दरोगा जी छोटे दरोगा जी के पास गए और सुपरिन्टेंडेंट साहब की सारी योजना उन्हें समझा दी—दरोगा जी का चेहरा खिल सा गया ।

छोटे दरोगा जी भींगुरिया के कमरे में गए—भींगुरिया की शक्ल देखते ही फिर काँप उठे—बड़ी हिम्मत कर उसे उठाया और उसे उकड़ूँ बैठा दिया और स्वयं उसकी पीठ को पकड़ कर उसके पीछे बैठ गए । बड़े दरोगा जी ने छोटे दरोगाजी और भींगुरिया को एक ही कम्बल में इस प्रकार से लपेट दिया कि ऐसा लगता कि मानो भींगुरिया उकड़ूँ बैठा है ।

पाँच

मुनियाँ को खाना लाते देर न लगी बाहर खड़े बड़े दरोगा जी भी उसका इन्तज़ार कर रहे थे मुनियाँ को देखते ही बोले—

“चलो मेरे साथ अन्दर चलो पर देखना उससे बोलना बिल्कुल नहीं ।”

मुनियाँ ने उत्तर में केवल सिर हिला दिया ।

कमरे में यद्यपि एक दीया रखा टिमटिमा रहा था पर

उसका प्रकाश इतना न था कि कमरे की प्रत्येक वस्तु साफ दिखलाई पड़े । मुनियाँ ने देखा कि कमरे के कोने में एक बंडल सा रखा है, काँपते हुए कदमों से वह उस ओर बढ़ी, दीये के क्षीण प्रकाश में उसने भींगुरिया का चेहरा देखने का प्रयत्न किया उसका दिल काँप उठा—एक ओर को भुकी गर्दन पथराई सी आँखें, स्याह चेहरा वह भींगुरिया को पकड़ कर हिलाने वाली थी कि सहसा उसकी गोद की बच्ची एक चीख मार कर रो उठी—‘दरोगा जी ने लपक कर उसकी बांह पकड़ ली और दरवाजे की ओर उसे खींच लाये ।

बाहर गाँव के दो एक आदमी और खड़े हुए थे । दरोगा जी ने मुनियाँ को फटकारते हुए कहा—

“तुम तो मुझे नौकरी से हाथ धुलवा कर ही छोड़ोगी—बच्ची को इन्ही लोगों को दे जाती । साहब का सख्त हुक्म है कि भींगुरिया से कोई न मिले, तुमसे भी कह दिया था । कि बस तू खाना रख आ पर तू तो वहाँ बैठी ही रह गई, सुबह उसे जी भरकर देख लीजियो सुबह में कैसे न कैसे छुड़वा दूंगा—पर तुम लोग दया करने लायक नहीं……”

मुनियाँ की निगाहें नीचे भुकी हुई थीं उसकी आँखों के सामने वही एक ओर को भुकी गर्दन, पथराई आँखें, स्याह चेहरा नजर आ रहा था—गाँव वाले एक साथ बोल उठे—

“अजी आप इसका कसूर माफ करें यह तो बिलकुल पगली है आप सुबह भींगुरिया को छुड़वा दें हम जानते हैं कि भींगुरिया किसी भी फन में नहीं है वह अक्खड़ जरूर है ।”

“देखो भाई लोगो मैं अपनी कोशिश में तो कोई कसर नहीं छोड़ूंगा आगे भगवान जाने ।”

अन्दर कमरे में से थाली खटकने की आवाज आई “जा तू थाली उठा ला—लेकिन मैं अब तुझे उसके पास न जाने दूंगा ।” दरोगा जी ने मुनियाँ से कहा ।

थाली कमरे के दरवाजे पर ही रखी थी मुनियाँ ने कमरे में भाँक कर देखा भींगुरिया उसी प्रकार उकड़ूँ बैठा था हाँ अब कुछ कौने से एक ओर हट गया था कमरे में और कोई नज़र न आया । थाली में आधा खाना छोड़ दिया गया था । वह थाली उठाकर चुपचाप बाहर चली गयी, रह रह कर उसकी आँखों के सामने वही एक ओर की भुकी गरदन पथराई आँखें स्याह चेहरा नज़र आता ।

छः

रात को भींगुरिया को एक बोरी में बन्द कर दिया गया और बड़ी हवेली के पीछे के रास्ते से उसे निकाल कर जीप में डाल दिया गया । रात के दो बजे सहसा बड़ी हवेली में एक जोरों का शोर सुनाई दिया “पकड़ो-पकड़ो—भाग गया—भाग गया ।” ठाकुर साहब, सुपरिन्टैन्डेंट साहब, छोटे-बड़े दरोगा सिपाही, हवेली के नौकर सब इधर-उधर भागने लगे—“कैदी भाग गया, भींगुरिया भाग गया” का शोर चारों ओर फैल गया ।

हवेली के बाहर पेड़ के नीचे फटा कम्बल ओढ़े अपनी

छाती से तीनों ब्रच्छों को चिपकाये पड़ी मुनियां ने भी सुना “कैदी भाग गया” भींगुरिया भाग गया ।” उसकी आंखों के सामने फिर वही चित्र खिंच गया—एक ओर को झुकी गरदन पथराई आंखें, स्याह चेहरा । दरोगा जी ने सुबह रिपोर्ट लिख दी “कैदी भाग गया ।”



